आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधाराकी प्रमुख [illegible]

वर्ष - २० अक्टूबर २००१

रामकृष्णनिलयम,
जयप्रकाशनगर,
छपरा (बिहार)

RAMAKRISHNA MISSION VIDYAPITH
A Residential Senior Secondary School
RAMAKRISHNA NAGAR, PO : VIDYAPITH
DT. - Deoghar, Bihar, Pin : 814412
RLY. STATION : BAIDYANATH DHAM, E. RLY.

Phone : (06432) - 22413 & 20442
Telefax : 22360
E-Mail - rkmvidya@dte.vsnl.net.in

एक निवेदन

वर्ग द्वादश के लिए एक छात्रावास

मित्रो,

आप लोग यह जानकर निश्चित रूप से अत्यन्त प्रसन्न होंगे कि रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर ने पिछले वर्ष अप्रैल से इन्टर (एकादश एवं द्वादश) की पढ़ाई आरम्भ की है । इसके लिए एक नये परिसर का निर्माण किया गया है, जहाँ प्रार्थना-भवन, पुस्तकालय, वर्ग एकादश के लिए छात्रावास, भोजनगृह, इन्डोरियम का निर्माण हो चुका है । लेकिन आर्थिक कमी के कारण वर्ग द्वादश के लिए छात्रावास का निर्माण-कार्य आरम्भ नहीं हो सका है, जबकि वर्ग द्वादश का सत्र जनवरी २००१ से आरम्भ हो चुका है । इस कार्य को पूरा करने के लिए १४ लाख रुपयों (४००० वर्गफीट के लिए रु. ३५० प्रति वर्गफीट की दर से) की आवश्यकता है ।

अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान् एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ ।

चेक या ड्राफ्ट "रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर" के नाम से भेजे जाएँ ।

रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा ८०-जी के अनुसार आयकर से मुक्त है ।

५०,०००/- रुपये या उससे अधिक की राशि-दाताओं के नाम संगमरमर शिलाखंड पर अंकित किये जायेंगे ।

देवघर
दिनांक : गुरुपूर्णिमा २०००

स्वामी सुवीरानन्द
सचिव

।। उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।।

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

अक्टूबर, 2001

प्रबन्ध-सम्पादक

डॉ0 केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २०
अंक ३-४

वार्षिक ६०/- एक प्रति ५/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क
(२० वर्षों के लिए) ७००/-

-: सम्पादकीय कार्यालय :-

विवेक - शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर
छपरा : ८४१३०१ (बिहार)
दूरभाष : (०६१५२) २२६३६

इस अंक में

१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है ३

२. क्षमा प्रार्थना ४

३. गौतम बुद्ध ५
- डॉ0 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित

४. सद्गुरु-परायण मास्टर महाशय ८
- श्री आचार्य कालेलकर

६. स्वामी माधवानन्द (१) १३
- डॉ0 निवेदिता बक्शी

७. बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविन्द दियो बताय १६
- डॉ0 उषा वर्मा

८. भक्ति का फल २२

९. स्वामी रंगनाथानन्द की बांग्लादेश यात्रा २५

१०. महाशक्ति की उपासना २७
- डॉ0 रंजन सूरिदेव

११. आधुनिक अमरीकी प्रवृत्ति २९

१२. समाचार एवं सूचनाएँ ३०

१३. श्रद्धांजलि ३१

विवेक शिखा

के आजीवन सदस्य

१९४. स्वामी चिरन्तानानन्द - रा.कृ.मि. नरोत्तमनगर
१९५. श्री हरवंशलाल पाहड़ा - जम्मूतवी, कश्मीर
१९६. श्री योगेश कुमार जिंदल - दिल्ली
१९७. डॉ. अखिलेश्वर कुमार - कनखल
१९८. श्री अनिलकुमार पूनमचन्द जैन - नागपुर
२००. श्री डी.एन. देशमुख - चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
१९९. डॉ० शीला जैन - बीकानेर
२०१. श्री योगेश कुमार पालिया, झुनझुन (राजस्थान)
२०२. सचिव, रामकृष्ण वि. सेवाश्रम, अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३. श्री ओमभक्त बुड़ाथोपी - डॉग, नेपाल
२०४. श्री ए.डी. भट्ट टाचार्य - भद्रकाली (पं.बं.)
२०५. अध्यक्ष - हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा, सारण (बिहार)
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक गिरिडीह (बिहार)
२०७. श्रीमती निभा कौल - कलकत्ता
२०८. सचिव - रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
२०९. सचिव - रामकृष्ण मिशन, राँची (बिहार)
२१०. श्रीमती शुभा कामत - मुम्बई (महाराष्ट्र)
२११. श्री पंकज कुमार, सुवंसिरी (अ०प्र०)
२१२. श्री बी.एल. अग्रवाल, नगाँव (आसाम)
२१३. श्री कैलास खेतान, नगाँव (आसाम)
२१४. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१४. श्री संजय जिंतुरकर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
२१६. श्री सतीश कुमार बंशल, शक्तिनगर (दिल्ली)

विवेक शिखा

के आजीवन सदस्य

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर "विवेक शिखा" के "स्थायी कोष" की योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रूपये या इससे अधिक रूपये "विवेक शिखा" के "स्थायी कोष" के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू हैं।

- व्यवस्थापक

संरक्षक सूची

१.	श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	३,०००/-
२.	श्री नन्दलाल टॉटिया	कलकत्ता	१,०००/-
३.	श्री हरवंश लाल पाहड़ा	जम्मूतवी	१,०००/-
४.	श्रीमती निभा कौल	कलकत्ता	१,०००/-
५.	डॉ. सुजाता अग्रवाल	कर्नाटक	१,०००/-
६.	श्रीमती सुभद्रा हाकसर	कलकत्ता	५,०००/-
७.	स्वामी प्रत्यगानन्द	चेन्नई	१,०००/-
८.	श्रीमती रंजना प्रसाद	दुर्गापुर	१,०००/-
९.	श्री जी.पी.एस. धिमीरे	काठमांडू	१,०००/-
१०.	डॉ. निवेदिता बक्शी	कुर्ला प०	१,०००/-
११.	श्री उमापद चौधरी	देवघर	१,०००/-
१२.	श्री शत्रुघ्न शर्मा	फतेहाबाद	१,०००/-

।। उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।।

"उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो"

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

वर्ष २० अक्टूबर अंक - ३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल "विवेक शिखा"।।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

{ १ }

पका हुआ सावूत आम भगवान् के भोग में और अन्य भी कामों में आ सकता है; पर वह अगर कौए के द्वारा ठुनका हुआ हो तो किसी काम में नहीं आता । ऐसा दागी फल न तो देवता के भोग में चढ़ता है, न ब्राह्मण को दान दिया जा सकता है और न स्वयं के खाने के काम में लाया जा सकता है । इसीलिए पवित्र हृदय वालकों और युवकों को धर्म-मार्ग पर ले जाने का प्रत्यन करना चाहिए, उन्हें भगवान की सेवा में लगाना चाहिए, क्योंकि उनके मन में विषयवासना की कालिमा नहीं लगी होती । अगर मन में एक बार विषयबुद्धि प्रवेश कर जाए या विषयभोग रूपी विकट राक्षस की विकराल छाया पड़ जाए, तो फिर उसे परमार्थपथ पर ले जाना अत्यन्त दूभर हो जाता है ।

{ २ }

जव तक वासना का लेशमात्र भी रहे तब तक ईश्वर-दर्शन नहीं होते । इसलिए सामान्य वासनाओं को तृप्त कर लो और वड़ी-वड़ी वासनाओं को विवेक-विचारपूर्वक त्याग दो ।

{ ३ }

सभी स्त्रियों को अपनी माता की तरह देखो। कभी स्त्रियों के चेहरे की ओर नजर न डालो, सदा उनके पैरों की ही ओर दृष्टि रखो । ऐसा करने पर कोई कुभाव नहीं आ पाएगा ।

{ ४ }

अगर चूल्हे की आग पर गीली लकड़ी भी रख दी जाए तो आँच लगकर उसके भीतर का पानी सूख जाता है और लकड़ी जल उठती है । इसी तरह, साधुसंग के प्रभाव से संसारी जीवों के भीतर से कामिनी-काँचन रूपी जल सूखकर उनमें विवेक की अग्नि जल उठती है ।

{ ५ }

एक या दो सन्तान हो जाने के बाद पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहते हुए सतत् भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि "हे प्रभो, हमें शक्ति दो ताकि हम संयम और पवित्रतापूर्ण जीवन बिता सकें ।"

क्षमा - प्रार्थना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ।। १ ।।

हे परमेश्वरि ! मेरे द्वारा रात-दिन सहस्रों अपराध होते रहते हैं। 'यह मेरा दास है' यों समझकर मेरे उन अपराधों को तुम कृपा पूर्वक क्षमा करो ।।१ ।।

आवाहनं न जानामि न जनामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ।। २ ।।

परमेश्वरि ! मैं आवाहन नहीं जानता, विसर्जन करना नहीं जानता तथा पूजा करने का तरीका भी नहीं जानता, मुझे क्षमा करो ।।२ ।।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।। ३ ।।

हे देवि ! हे सुरेश्वरि ! मैंने जो मंत्रहीन, क्रियाहीन और भक्तिहीन पूजन किया है, वह सब आपकी कृपा से पूर्ण हो ।।३।।

अपराध शतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ।।४।।

सैकड़ों अपराध करके भी जो तुम्हारी शरणों में जा "जगदम्बा" कहकर पुकारता है, उसे वह गति प्राप्त होती है, जो ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी सुलभ नहीं है ।।४ ।।

सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदिम्बके ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरू ।। ५ ।।

हे जगदम्बिके । मैं अपराधी हूँ, किन्तु तुम्हारी शरण में आया हूँ। इस समय दया का पात्र हूँ । तुम जैसा चाहो, वैसा करो ।।५ ।।

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ।। ६ ।।

हे देवि ! परमेश्वरि ! अज्ञान से, भूल से, अथवा बुद्धि के भ्रान्त होने से मैंने जो न्यूनता या अधिकता कर दी हो, वह सब क्षमा करो और प्रसन्न होओ ।।६ ।।

कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्द विग्रहे ।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ।। ७ ।।

सच्चिदानन्दस्वरूपा परमेश्वरि ! जगन्माता कामेश्वरि ! तुम प्रेमपूर्वक मेरी यह पूजा स्वीकार करो और मुझ पर प्रसन्न रहो ।। ७।।

गुह्यातिगुह्य गोप्त्री त्वं गृहाणस्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ।। ८ ।।

देवि ! सुरेश्वरि ! तुम गोपनीय से भी गोपनीय वस्तु की रक्षा करनेवाली हो । मेरे निवेदन किये हुए इस जप को ग्रहण करो । तुम्हारी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो ।।८ ।।

।। श्री दुर्गार्पणमस्तु ।।

गौतम बुद्ध

'धर्म-नियम ही जिनका उत्तराधिकार था'

- डा. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मुजफ्फरपुर (बिहार)

विश्व-सभ्यता के लंबे इतिहास में ऐसे महापुरुष विरले ही हुए हैं, जिन्होंने अपना समस्त भव-बंधन स्वयं काट लिया हो, लौकिक घर उजाड़ लिया हो और सारा जीवन जब तक वे जीये, एक ही महाव्रत बना रहा उनका 'लोकमंगल की महासाधना'। ऐसे ही विशिष्ट विभूति पुरुषों में थे शास्ता गौतम बुद्ध। लगभग ढाई हजार वर्ष से भी अधिक हुए उनके महापरिनिर्वाण को, तब भी भारत-नेपाल ही नहीं, चीन, जापान, अफगानिस्तान, मंगोलिया, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, लंका और तिब्बत आदि देशों में गौतम बुद्ध की कलापूर्ण, भव्य प्रतिमाएँ ही नहीं, उनके उदात्त चिंतन की पवित्र ज्वाला सुलग ही रही है और आज भी विश्वमानवता के अंतःकरण को वह अहिंसा, प्रेम, करुणा के भावों से किसे स्पंदित और तरंगित नहीं करती ! गौतम बुद्ध की सम्पूर्ण जीवन-यात्रा श्रेष्ठतम जीवन-मूल्यों की तलाश में ही समर्पित रही है। 'त्रिपिटक', 'सद्धर्म पुण्डरीक' और 'सौन्दरनंद' जैसी लोकोत्तर बौद्ध कृतियाँ इस तथ्य का ज्योतिर्मय साक्ष्य हैं कि गौतम बुद्ध और उनका जीवन-संदेश मनुष्यत्व के उद्बोधन के मानो भावप्रवण कालात्मक जीवन-गीत हैं।

सारनाथ, मथुरा, अमरावती, अजंता, तक्षशिला (पाकिस्तान), वाहियान और फंदुकिस्तान में बनी बुद्ध की प्रतिमाएँ उस चरम सत्य का प्रमाण हैं कि मानवता के विशाल हृदय में, बुद्ध के गरिमामय, तेजोमय व्यक्तित्व और उदात्त चिंतन ने किस गहराई तक पृथ्वी के विशाल भू-भाग की मानवीय चिंतन धारा को उद्वेलित किया है। आज अफगानिस्तान के तालिबानों ने अपनी धर्मांधता की प्यास बुझाने के लिए विश्व की सबसे ऊँची भव्य बुद्ध प्रमिाओं को ध्वस्त कर दिया है, पर उससे समस्त विश्व मानसिकता बौद्ध-चिंतन और कला के प्रति और भी सजग हुई हैं। गौतम बुद्ध के जीवन में असाधारण घटनाएँ अनेक हैं जो हमारा ध्यान बरबस उनकी ओर आकर्षित करती हैं। उनमें से एक यह है कि उनका जन्म लुंबिनी में, बुद्धत्व बोधगया में और निर्वाण कुशीनगर में तीनों महत्वपूर्ण घटनाएँ वैशाख पूर्णिमा के पावन दिन को ही घटित होती हैं। पर, सबसे अधिक असाधारण तो यह है कि जब वे जन्मे तो उनकी माँ उसी दिन गुजर गयीं। ज्योतिषी ने हस्तरेखा देखकर कहा-राजन! आपका यह पुत्ररत्न चक्रवर्ती सम्राट होगा या योगीराज ! सो लगातार २९ वर्षों तक उसके जीवन-पथ पर सुख-भोग-विलास के कोमल उपकरणों का रेशमी जाल बिछा दिया गया। ऐश्वर्य और सौन्दर्य का सजीव, मोहक शृंगार कदम-कदम पर राजकुमार के बेचैन पाँवों में लड़ियाँ सी बाँध दी थीं। पर 'घर छोड़ बेघर होने' का संकल्प भी कुमार के मन में उतना ही प्रबल था। जिस दिन यशोधरा को पुत्र हुआ, कुमार सिद्धार्थ उसी रात, राजमहल, राजसत्ता का सुख-सौभाग्य, माता-पिता, प्रियतमा यशोधरा और प्यारी प्रजा का मोहबंधन तार-तार कर, 'मार' की हजार चुनौतियों को दुत्कार, छंदक घोड़े की पीठ पर बैठकर निकल पड़े वे तो फिर कभी राजमहल की ओर न देखा। रुके तो अनोमा नदी के तट पर अपने घुंघराले

> छह वर्षों की लंबी कठोर तपस्या ! पल-पल रोमहर्षक चुनौती 'मार' की। पर कुमार बालभर नहीं डिगे। सदा अविजित, एकदम निर्द्वन्द्व, निर्विकल्प समाधि की ओर अग्रसर, 'सतयसूर्य' के रूप में यह एक नया 'अभिताभ' फूटा अंतर में। सुजाता की खीर को तो उसने ग्रहण किया परवह स्वर्ण-थाल नदी की लहरों पर तैरती-डूबती-उतरती नदी-तल में चली गयी। एक सप्ताह तक दृढ़ प्रतिज्ञ, संकल्पशील कुमार सिद्धार्थ एकआसन पर ब्रजवत्, एक मुद्रा में विराजमान रहे। न किंचित् कंपन न स्पंदन !

काले केशों को काटकर चंचल प्रवाह को अर्पित कर दिया। लौटा दिया मूक पशु को और सारथि कंथक को भी। दोनों के नयनों से अजस्र आंसू छल-छल कर ढुलकते ही रहे।

छह वर्षों की लंबी कठोर तपस्या ! पल-पल रोमहर्षक चुनौती 'मार' की। पर कुमार वालभर नहीं डिगे। सदा अविजित, एकदम निर्द्वन्द्व, निर्विकल्प समाधि की ओर अग्रसर, 'सत्यसूर्य' के रूप में यह एक नया 'अभिताभ' फूटा अंतर में। सुजाता की खीर को तो उसने ग्रहण किया पर वह स्वर्ण-थाल नदी की लहरों पर तैरती-डूबती-उतरती नदी-तल में चली गयी। एक सप्ताह तक दृढ़ प्रतिज्ञ, संकल्पशील कुमार सिद्धार्थ एक आसन पर वज्रवत, एक मुद्रा में विराजमान रहे। न किंचित् कंपन, न स्पंदन ! तव मध्य आकाश में वैशाखी की पूनम का चंद्र ज्योत्स्ना-स्नात था-सर्वत्र सर्वशुक्ला, सारस्वत सात्विकता की विभूति, ऐश्वर्य अग-जग में व्याप्त था। उस पिप्पल की डाल-डालपर फुनगियों पर लाल टूसे लहलहा रहे थे। तभी तपःपूत, कृशकाय, दृढ़निश्चयी कुमार के अंतर-आकाश में परम सत्यज्ञान, 'वोध' का सूर्य प्रतिभासित हो उठा-उनके हृदय की गुफा में एक उज्ज्वल प्रकाश-स्वन मुखरित हुआ-'वीणा के तारों को इतना न ऐंठो कि वह टूट जाय और स्वर की उम्मद रागिनी झंकृत ही न हो, न इतना शिथिल ही करो कि उसके हृदय को तरंगित करने वाली अनहद नाद की ध्वनि-प्रतिध्वनि ही न हो।' वह पूनम की प्यारी रात समस्त मनुष्यता के लिए निराली हो गयी-एक अद्भुत, अपूर्व, संपूर्ण मनुष्यता का आह्वान ! जीवमात्र के लिए। प्रीति का प्रथम आह्वान ! वोध की प्राप्ति कर भी गौतम वुद्ध थमे नहीं वोधगया में। उन्होंने विद्या और ज्ञान की पारंपरिक नगरी काशी के निकटवर्ती ऋषिपत्तन सारनाथ में अपने आत्मवोध को पहले-पहल प्रकाशित किया। 'चार आर्य सत्यों' और आठ अष्टांगिक' मार्गों का प्रकाशन किया, जिसके अनुपालन से मनुष्य निर्वाणोन्मुखी होता है। वौद्ध चिंतन लोकप्रियता के साथ जन-जन के जीवन को सत्यज्ञान की ओर प्रवृत्त कर सके इसलिए वौद्धधर्म के संगठन और प्रसार के लिए संघ का संगठन किया। एक आह्वान-मंत्र का उद्घोष किया-वुद्धं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। इसे 'त्रिशरण' की संज्ञा दी गयी। वौद्ध धर्मावलंवियों की संख्या वढ़ती गयी। मूल उदात्त धर्म का स्पष्ट निर्देश दिया गौतम वुद्ध ने-चरथ भिक्खवे वहुजन हिताय, वहुजन सुखाय। ओ भिक्षुओ ! वहुजन के हित, वहुजन के सुख के लिए आजीवन विचरण करते ही रहो।

वुद्ध वौद्धधर्म का उपदेश देने के क्रम में, सारनाथ, राजगीर, नालंदा, पाटलिपुत्र, वैशाली, कुशीनगर, श्रावस्ती, वत्सदेश, कपिलवस्तु, गया कहाँ-कहाँ नहीं गये ! वहुत से महाजन पदों में तो वे वार-वार गये। जिधर गये उधर ही राजा-रंक-फकीर और वड़े-वड़े संत, विद्वान उनके परम भक्त और अनुयायी वन गये। पिता के वहुत आग्रह करने पर धर्मचर्या के क्रम में वे कपिलवस्तु पहुँचे, पूरी भिक्षु सेना के साथ। उसमें धर्म सेनापति सारि पुत्र, महामोग्गलायन, महाकाश्यप भी थे। यह धर्मसेना और स्वयं गौतम वुद्ध राजमहल में नहीं, एक आम्रवन में ठहरे। कपिलवस्तु प्रवास के काल में पिता शुद्धोदन और मौसी महाप्रजावती के आग्रह के कारण अपनी तपस्विनी पत्नी यशोधरा को दर्शन देने गये। साथ में थे महाकाश्यप और महामोग्गलायन। यशोधरा ने अपने पुत्र को शिक्षा दी थी-'पिता आवें तो अपना दायाद (उत्तराधिकार) माँगना अपने पूज्य पिता से'। सो राजमहल में वुद्ध पधारे तो दस वर्ष के अवोध राहुल ने कहा- हमें अपना दायाद दो। गौतम वुद्ध सुनते रहे। तीसरी वार उसने आग्रह किया, तो कहा-वच्चे। गौतम वुद्ध के पास एक धर्म ही संपदा हैं, उसे तुम्हें मैं देता हूँ। कहा-महामोग्गलायन, इसका मस्तक मुंडित करो। इसे अपना गेरुआ उत्तरीय देकर त्रिशरण का पाठ करा संघ में दीक्षित कर लो। इस वर्ष का यह एकमात्र वुद्ध का पुत्र संघ में प्रवेश कर गया। महाकाश्यप ने धर्म का उपदेश दिया। वह दीक्षित कर लिया गया। पर गौतम वुद्ध ने अपने से दूर वहुत दूर के संघ में धर्मोपदेश की व्यवस्था की जव तक वे जीये।

इसी महत्वपूर्ण यात्रा के क्रम में नंद, आनंद और अनिरुद्ध भी धर्म में दीक्षित हुए। कालक्रम से पिता

शुद्धोदन तो दीक्षित हुए ही । यहाँ तक कि महाप्रजावती गौतमी और पत्नी यशोधरा भी भिक्षुणी हो गयीं और उनके साथ पाँच सौ अन्य स्त्रियाँ भी जो कपिलवस्तु से पैदल चलकर आयी थीं । बौद्ध संघ की यह बड़ी घटना (स्त्रियों का बौद्धधर्म में प्रवेश) वैशाली महाजनपद में घटी । अम्बपाली तो संघ में भिक्षुणी वर्षों बाद बनी । थेरीगाथा में उसके अनिंद्य सौन्दर्य, यौवन और वैराग्य का अद्भुत रोमांचकारी वर्णन है ।

गौतम बुद्ध बोध-प्राप्ति के उपरांत लगातार पैतालीस वर्षों तक सद्धर्म का प्रचार करते ही रहे । तब वे अंतिम बार वैशाली महाजनपद आये । अस्सी की ढलती आयु ! आनंद से कहा-तथागत का परिनिर्वाण मल्लों की राजधानी कुशीनगर में होगा । आओ ! चारिका करते हुए आगे बढ़ें। वर्तमान देवरिया के निकटवर्ती चुन्दकुमारपुत्त के यहाँ उन्होंने अंतिम भोजन किया । कई दिनों तक यात्रा के उपरांत मल्लों की राजधानी के निकटवर्ती शाल उपवन की छाया में उन्हें लेटा दिया गया । मल्लवासी नर-नारियों ने अश्रुओं का अर्घ्य दे उनके पावन चरणों को धोया । बड़े-बड़े भिक्षु उन्हें घेर उदासी में डूबे हुए थे । शास्ता ने पूछा-आनंद कहाँ है ? भिक्षु ने कहा-साधना-कक्ष में खूंटी पकड़, बिलख-बिलखकर रो रहे हैं । शास्ता ने कहा-जाओ, उन्हें बुला लाओ । कपोलों पर लुढ़कते आँसुओं को पोंछते हुए उन्होंने कहा, आनंद, तुम मेरे साथ पचीस वर्षों से निरंतर हो, मेरी गहन शिक्षा का क्या यही अर्थ है ? आनंद शोक विह्वल, मौन भाव से सुनते ही रहे । धीरज रह-रह कर टूट-टूट पड़ता था । एक भिक्षु ने पूछा-शास्ता ! आप शरीर छोड़ रहे हैं, आपके बाद आप का उत्तराधिकारी कौन होगा ? गौतम बुद्ध ने कहा-धर्म-नियम ही इस संघ का उत्तराधिकारी होगा । सर्वत्र गहन शांति विराजमान थी । तभी एक और शांत-प्रसन्न भिक्षु बोला-शास्ता ! हमें अपना अंतिम उपदेश दें । तथागत ने कहा-'हमारे सारे संस्कार वयधर्मी, क्षयशील हैं । आजीवन निर्धारित कर्त्तव्यों का सावधानी के साथ पालन करो । ये मेरे अंतिम वचन हैं' । यह कह दक्षिण करवट लेट समाधिमग्न हो गये । मुखपर प्रभामंडल छा गया । धीरे-धीरे प्रकाश छाया के रूप में बदलता गया । पश्चिम में सूर्य डूब रहा था । बुद्ध ने जिन विचारों के आलोक-पिंड का प्रवर्तन किया उसकी अमिट आभा ढ़ाई हजार वर्षों से सम्पूर्ण विश्व को मैत्री-दृष्टि की प्रेरणा दे रही है । वह निश्चय ही, कभी न मंद पड़ी, न पड़ेगी । वह मनुष्यता को प्रेम, करुणा और मैत्री-दृष्टि का अमृत संदेश देती ही रहेगी । ❋

।। ॐ नमो बुद्धाय तस्स भगवतो, अर्हतो सम्मा संबुद्धस्स ।।

प्रेरक प्रसंग

श्री जीव गोस्वामी और मीराबाई

मीराबाई व्रज में श्रीजीव गोस्वामी-जैसे महान वैष्णव भक्त-विरक्त एवं विद्वान के दर्शन लाभ के लिए आई । गोस्वामीजी के किसी शिष्य ने उनसे कहा - 'वे स्त्री का मुख नहीं देखते ।' मीराबाई ने उलाहना देते हुए उत्तर दिया - 'मैं तो समझती थी कि वृन्दावन में गिरिधरलाल ही एकमात्र पुरुष हैं, और सब गोपी हैं । मैं नहीं जानती थी कि यहाँ जीव गोस्वामी भी एक पुरुष हैं, जो स्त्रियों का मुख नहीं देखते ।' जीव गोस्वामी ने जब कुटिया के भीतर से ही यह सुना तो प्रसन्न हो कर बाहर निकल आए और मीराबाई से मिले ।

सद्गुरु-परायण मास्टर महाशय

- श्री आचार्य कालेलकर

{मासिक पत्रिका हंस के जनवरी, १९३६ ई० के अंक से साभार ।-सं०}

जिस प्रकार न्यायमूर्त्ति रानाडे के धर्म-विषयक लेखों के कारण मैं नास्तिकता से आस्तिकता की ओर वापस लौटा, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के मूल-ग्रन्थों के पढ़ने के कारण मेरा झुकाव फिर 'सन्त-मत' की ओर हो चला था; किन्तु स्वामी विवेकानन्द को पढ़कर भी मैंने 'प्रार्थना-समाजी वृत्ति' न छोड़ी होती, यदि स्वामीजी का यह वाक्य मेरे अन्तःकरण पर प्रभाव न डालता कि मुझ में तुम जो कुछ देखते हो, वह सब मुझे अपने सदगुरू रामकृष्ण परमहंस से प्राप्त हुआ है। धर्म का आशय है श्रद्धा, निष्ठा, अनुभव और साक्षात्कार। इन सबका संग्रह रामकृष्ण परमहंस में था और वे सचमुच ही अवतारी पुरुष थे, युग पुरुष थे । अँग्रेजी-शिक्षा से विशेष प्रभावान्वित होने के कारण और स्वामी विवेकानन्द का उपदेश भी अँग्रेजी में होने से ही विशेष रूप से हृदयंगम हो सका, ऐसा मुझे आज भी जान पड़ता है । मैक्समूलर द्वारा प्रकाशित रामकृष्ण परमहंस के उपदेश भी उतना अधिक हृदयंगम न हो पाते, यदि उससे पूर्व मैंने विवेकानन्द को न पढ़ लिया होता । अँग्रेजी-भाषा के आकर्षण के अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द की विवेचन शैली भी ध्यान देने की वस्तु है । उन्हें इस बात का अच्छी तरह पता था, कि मुझे अपनी बातें बुद्धिवादी जगत् के सम्मुख उपस्थित करनी हैं । साथ ही उसी शैली से निरूपण करने में भी वे सिद्धहस्त थे ।

स्वामी विवेकानन्द ने राजनीति में कभी भाग नहीं लिया; किन्तु फिर भी देशाभिमान उनकी नस-नस में समाया हुआ था । इस श्रद्धा को भी उन्होंने जन्म दिया कि 'पतित भारत प्रबुद्ध भारत बनकर संसार का गुरुपद ग्रहण करे' और इसके अनुसार उन्हें अनेक पाश्चात्य-शिष्य भी मिले । उनमें भगिनी निवेदिता का नाम विशेष रूप से लिया जाना चाहिए। इस माहन् भगिनी ने शिक्षा शास्त्र, इतिहास और कला का गम्भीर अध्ययन किया था, इसी प्रकार समाज-शास्त्र-विषयक आकलन भी उसका असाधारण था । स्वामी विवेकानन्द जैसे प्रतिभावान् महापुरुष से हिन्दू धर्म, हिन्दू-संस्कृति का रहस्य समझ सकने की पात्रता उसमें विशेष रूप से थी । और उस रहस्य को अपनी संस्कारी एवम् सहानुभूति-पूर्ण दृष्टि से गौरव-पूर्ण शैली में संसार के सम्मुख रखने में भी वह सफल हुई । उसका सारा साहित्य उच्चकोटि का है, और उसका पढ़ना मानो विश्वविद्यालय की सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर लेना है । इस महान् देवी ने भारत में आकर हिन्दू-धर्म की दीक्षा ग्रहण की और हिन्दू-समाज के साथ एकरूप होकर शुद्ध अन्तःकरण-पूर्वक लगन से सेवा करते हुए चन्दन की तरह अपनी काया को घिस-घिसकर जीवन सफल किया । उसे प्रतीत होता था कि रामकृष्ण और विवेकानन्द की जोड़ी गुरु-शिष्य के रूप में नहीं; वरन् इन दो शरीरों में विचरनेवाले एक ही व्यक्ति को ईश्वर ने भेजा था । इसी की प्रेरणा से अनेक बंगाली युवकों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करके अपने बुद्धि-वैभव द्वारा विभिन्न प्रकार का चमत्कार कर दिखाया है ।

एक दिन गेरुआ जिल्द की एक पुस्तक मेरे हाथ में आई । उसका नाम था-'दि गास्पेल ऑफ रामकृष्ण परमहंस' (अकार्डिङ्ग टु एम०) 'दि आयडियल मेन फॉर इण्डिया एण्ड दि वर्ल्ड' । प्रारंभ में ही स्वामी विवेकानन्द का आभार-प्रदर्शक पत्र था-'अत्यन्त, अत्यन्त, अत्यन्त, आभार । ईश्वर की इच्छा गुरुदेव का चरित्र आप ही के हाथों से लिखवा लेने की थी । हम लोगों से यह काम कभी न बन पड़ता। ग्रीस देश में अफलातून (प्लेटो) ने अपने गुरु सुकरात का संवाद लिख रक्खा है; किन्तु उसमें सर्वत्र प्लेटो ही भरा हुआ है । आपने गुरुदेव का संवाद तो लिख डाला; किन्तु अपने को पूर्णतया गुप्त ही रखा है ।

उक्त ग्रंथ के रचयिता 'एम्' रामकृष्ण परमहंस के शिष्य महेन्द्रनाथ गुप्त ही थे । स्वामी विवेकानन्द ने उपर्युक्त पत्र में उनके अल्ल 'गुप्त' शब्द पर बड़े मजे की कोटि (उक्ति) की है (इस स्मृति-चित्र को लिखते समय एक भी ग्रंथ मेरे पास नहीं है । उपर्युक्त अवतरण भी मैंने अपनी स्मृति के आधार पर दिया है ।) रामकृष्ण मिशन में महीन्द्रनाथ गुप्त को मास्टर महाशय कहा जाता था ।

उन्होंने 'मार्टन इंस्टिच्यूट' नाम का एक बहुत बड़ा हाई स्कूल चलाया था; कदाचित् उसी के कारण उनका यह नाम पड़ा हो ।

मास्टर महाशय का 'गास्पेल' सचमुच ही एक अप्रतिम ग्रंथ है । रामकृष्ण परमहंस अपनी शिष्य-मंडली में बैठकर जो अनेकानेक धर्म-संवाद किया करते, उन्हें ये अत्यन्त निष्ठापूर्वक अक्षर-अक्षर अपनी डायरी में लिख लेते थे; अतएव गुरुदेव के देह-त्याग के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द द्वारा रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जाने पर इन्होंने अपनी डायरी में के नोट देखकर उसी पर से सब संवाद लिख डाले । प्रत्येक संवाद के आरंभ में, गुरुदेव कहाँ बैठे थे, किस ओर उनका मुख था, किस प्रकार की रजाई वे ओढ़े हुए थे, उनका हुक्का कौन तैयार कर रहा था इत्यादि सभी छोटी-मोटी बातें लिखकर उन्होंने उस प्रसंग का हू-ब-हू शब्दचित्र हमारे सामने उपस्थित कर दिया है ।

रामकृष्ण परमहंस पठित विद्वान नाम को भी नहीं थे । उनका समग्र ज्ञान भिन्न-भिन्न अवसरों पर उनके गुरु बताये हुए विभिन्न व्यक्तियों के (गुरु) मुख से ही प्राप्त हुआ था । भिन्न-भिन्न साधनाओं का उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव कर देखा था । जब कोई उनके सामने बैठकर शास्त्र पढ़ने लगता, तो वे कहते कि 'जो कुछ मैं कहता हूँ, वही अर्थ सच्चा है; क्योंकि यह अनुभव का विषय है । यदि मेरा बतलाया हुआ अर्थ-शास्त्र से व्यक्त न होता हो, अथवा शास्त्र-वचनों में संगत' न होता हो, तो समझ लेना चाहिए कि लिखने या अर्थ करने में अवश्य कहीं भूल हुई है ।'

प्रत्येक शिष्य को तैयार करने की उनकी पद्धतियाँ भी भिन्न-भिन्न थीं । जिसकी जैसी योग्यता और मनोवृत्ति होती, उसे उसी प्रकार की साधना वे बतलाया करते थे । एकदम पहली ही भेंट में गुरुदेव ने किस प्रकार उन्हें कृपापात्र बना लिया, इसका अत्यन्त छटादार वर्णन देकर मास्टर महाशय ने अपने ग्रंथ का आरंभ किया है । मूल में संवाद 'श्री रामकृष्ण-कथामृत' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए थे । उसी का अंग्रेजी करके मास्टर महाशय ने अपने 'गास्पेल' लिखे । इस पुस्तक से उन्हें बहुत लाभ हुआ; किन्तु उसे उन्होंने 'कथामृत-फंड' के नाम से अलग रखकर चरित्रवान् साधकों को उसमें से बराबर सहायता दी ।

जिस प्रकार कौए को कोई खाद्य पदार्थ मिलने पर वह काँव-काँव करके अपने सब जात-भाइयों को बुला लेता और अकेले ही न खाकर इष्ट मित्रों के साथ बैठकर खाने की शास्त्र-आज्ञा का पालन करता है, वही दशा मनुष्य प्राणी की भी है; अतः मैंने भी अपने एक मित्र के साथ 'गास्पेल' का मराठी अनुवाद करने का निश्चय किया । इससे पूर्व स्वामी रामतीर्थ के लेखों का अनुवाद कर चुकने से 'आधुनिक सुशिक्षितों का वेदांत' मराठी में प्रतिपादन करने की कला मुझे कुछ सध गई थी ।

उन्हीं दिनों वेदान्त के पठन एवम् मनन तथा देश की परिस्थिति के कारण मुझे वैराग्य-साधना के लिए हिमालय में जाना आवश्यक प्रतीत हुआ; अतएव वहाँ जाने से पूर्व कलकत्ते जाकर स्वामी विवेकानन्द के मठ, उद्बोधन कार्यालय के स्वामी शारदानन्द, श्री शारदा माता (रामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी) और मास्ट महाशय से मिल लेने का मैंने निश्चय किया । सुबह ९-१० बजे के लगभग मैं मास्टर महाशय के घर पहुँचा। घर बतलाने के लिए मिशन का एक ब्रह्मचारी मेरे साथ आया था। मुझे पता लगा कि मास्टर महाशय पूजा में बैठे हुए हैं। घर में जहाँ-तहाँ सादगी दिखाई देती थी । थोड़ी ही देर में एक भव्य-मूर्ति हमारे सामने आकर खड़ी हो गयी । मुझसे थोड़ी-सी जानकारी प्राप्त करने के बाद उन्होंने संतोष पूर्वक कहा-'गास्पेल का मराठी अनुवाद करनेवाला केवल पंडित ही नहीं; वरन् साधक भी है, यह परम संतोष की बात है ! शुभ दाढ़ी के कारण उनका चेहरा तो भव्य दिखाई देता ही था; किन्तु उससे अधिक उनके नेत्रों से दीर्घ काल पर्यन्त ध्यान में बैठने की दृढ़ता व्यक्त होती थी । सामने देखते समय उनकी दृष्टि में व्यवहार कुशल मनुष्य की बेधकता और अध्यात्म-परायण व्यक्ति की साधुता का उत्तम मिश्रण व्यक्त होता था । कुछ देर बातचीत करने के बाद मैं उनसे विदा हुआ ।

इसके बाद मैंने हिमालय के गंगोत्री-जमुनोत्री केदारबदरी और कश्मीर के अमरनाथ आदि की यात्रा समाप्त कर पुरश्चरण के लिए हृषीकेश के निकट ही कहीं रहने का निश्चय किया । वहाँ रहते समय रामकृष्ण मिशन के एक संन्यासी एवम् दो ब्रह्मचारी मेरे पड़ोस में रहने आ गये थे । उनके साथ मैं मुख्यतः धर्म, साधना अथवा देश एवम् परिस्थिति

की ही चर्चा किया करता । मेरे मित्र अनंतबुआ (बाबा) मर्ढेकर और स्वामी आनंन्द भी उन दिनों हृषीकेष में ही थे । एक दिन निर्मल नामक बंगाली ब्रह्मचारी ने मुझसे कहा कि मास्टर महाशय इस बार जाड़े में कुछ दिन के लिए हृषीकेश में आकर रहेंगे। यह सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ । उनको ठहराने के लिए स्थानादि का प्रबन्ध करने में मैंने बहुत कुछ परिश्रम किया था । जिस दिन वे आये वह दिन 'दास नवमी' (समर्थ रामदास की पुण्य तिथि) का था । अनन्तबुआ ने समर्थ की पुण्यतिथि मनाई थी । उस दिन से हम अनेक बार मास्टर महाशय के पास जाने और रामकृष्ण परमहंस एवम् स्वामीजी विषयक स्मृतियाँ उनसे सुना करते । उस समय उनके स्वर की प्रेमार्द्रता और अपत्य-वत्सलता विशेष रूप से व्यक्त होती थी । हम में से अनन्तबुआ की भक्ति देखकर उन्हें विशेष आनन्द होता । एक दिन मास्टर महाशय ने मुझसे कहा-तुम्हें बहुत कुछ कर्म करने हैं; किन्तु बुआ (बाबा) के सब कर्म समाप्त हो जाने से उनके हिस्से में केवल भक्ति ही भक्ति शेष रह गई है ।

साधक को किस प्रकार रहना और कैसा आचरण रखना एवम् कितना बोलना और कहाँ तक मौन रखना चाहिए, इन सब बातों को वे हमें विस्तार पूर्वक समझाया करते थे । मुझे याद है, एक बार उन्होंने यह भी कहा था कि यदि मिठाई खाने की कभी इच्छा हो, तो साधक को चाहिए कि गुरुदेव के मतानुसार वह पेड़े नहीं; वरन् जलेबी ही खाये; क्योंकि पेड़े ब्रह्मचारी के लिए घातक हैं; किन्तु जलेबी के विषय में यह बात नहीं है । इस प्रकार उन्होंने पेड़े और जलेबी का भेद समझाया था ।

मास्टर महाशय के पास रामकृष्ण परमहंस के समय की वासरियों (डायरियों) की छोटी-छोटी बहियाँ रहती थीं । उनके किसी पेज को खोलकर उसमें लिखी हुई बातों को वे देखते और फिर पाँच-सात मिनट आँख बन्द करके उन लिखी हुई बातों का ध्यान करते । इस प्रकार जब वह प्रसंग उनके अन्तश्चक्षुओं के सम्मुख प्रत्यक्ष उपस्थित हो जाता, तब वे उसका वर्णन करने लगते थे । उस समय हमें यही प्रतीत होता कि वे हमारे सम्मुख नहीं बैठे हुए हैं; वरन् उस प्रसंग के समय और परमहंस के सान्निध्य में पहुँच गये हैं ।

मास्टर महाशय शिष्टाचार में बहुत ही पुरातन मत के दिखाई देते थे । हमारी मंडली या अन्य ब्रह्मचारी अथवा साधु संन्यासी से किसी प्रकार की सेवा लेने में उन्हें अपने गृहस्थाश्रमी होने के कारण पद-पद पर बड़ा संकोच होता था । खाने की वस्तुएँ हमलोग अन्य क्षेत्र से लाते थे; इस कारण उन्हें तो वे हमसे नहीं ही लेते थे; किन्तु हमारे द्वारा उनका आसन उठाया जाना अथवा पानी का लोटा भरा जाना भी उन्हें ठीक नहीं जान पड़ता था । उनके इस संकोच को दूर करने के लिए प्रथमतः मैंने महाराष्ट्रीय-पद्धति का अत्याग्रह कर देखा; किन्तु बंगाली साथियों ने मुझे मना कर दिया । वे कहने लगे-मास्टर महाशय तुम्हारे आग्रह के कारण खिन्न हो जाते हैं ।

एक विषय में मैंने उन्हें और भी बहुत दुखी किया । हृषीकेश में जब मास्ट महाशय प्रसिद्ध संन्यासियों से मिलने अथवा विभिन्न संस्थाओं को देखने के लिए जाते, तब मुझे भी उनके साथ जाना पड़ता । उस समय मैं इस विचार से कि लोग इन महापुरुष के साथ उचित सम्मानपूर्वक व्यवहार करें, किसी प्रकार का वार्त्तालाप आरम्भ करने से पूर्व शीघ्रता से उनका परिचय देने लग जाता था कि ये स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई (गुरुबन्धु) हैं । इन्होंने रामकृष्ण के प्रत्यक्ष सुने हुए संवाद लिखकर प्रकाशित किये हैं, इत्यादि। मास्टर महाशय मुझे बारम्बार कहते कि मेरा जरा भी परिचय मत दीजिए; क्योंकि मैं बिलकुल साधारण मनुष्य की तरह सब बातें देखना चाहता हूँ । साथ ही मुझे यह भी जान लेना है कि ये संन्यासी साधारण मनुष्यों के मामूली प्रश्नों का उत्तर किस प्रकार दिया करते हैं; किन्तु मुझे यह जान पड़ता कि यदि लोगों ने इनके साथ विनय पूर्वक व्यवहार न किया और ओछेपन से बातचीत की, तो उस समय मेरी क्या दशा होगी ! मैं अपनी आँखों से इनका अपमान या अनादर होते कैसे देख सकूँगा ? क्या ऐसा करना मेरे लिए कर्त्तव्यच्युत होने जैसा न होगा ? इन भावनाओं के साथ मैं अपने प्राण मुट्ठी में लेकर उनके साथ घूमता और प्रत्येक स्थान पर उनका परिचय देने से नहीं चूकता था ।

एक बार मैं उन्हें स्वामी रामतीर्थ के एक शिष्य के पास ले गया । उन्हें अँग्रेजी आती थी । वहाँ से वापस आने के बाद दूसरे दिन मैं अकेला ही उन राम-शिष्य के

पास गया । उस समय वे दूसरे एक सज्जन से बातचीत करते हुए मास्टर महाशय के विषय में कहने लगे कि-'He ca'ls himself the guru of Swami Vivekanand' (वे अपने की स्वामी विवेकानन्द का गुरु कहलाते हैं ।) उनके इन उद्गारों में तिरस्कार की-सी भावना स्पष्ट दिखाई देती थी । मैंने तत्काल जान लिया कि मेरे वर्णन किये हुए शब्दों में से 'गुरुभाई' शब्द को इन्होंने पूरा नहीं सुना; इसीलिए मैंने उसी क्षण उनकी भूल का सुधार किया । यद्यपि उन्होंने इस भूल का सुधार तो किया; किन्तु फिर भी उनके चेहरे पर से तिरस्कार की भावना दूर न हो सकी; किम्बहुना वह और दृढ़ हो गई । मुझे बहुत बुरा लगा और उसी दिन से यह सोचकर कि एक महापुरुष की मेरे हाथों व्यर्थ ही असेवा हो रही है, मैंने उनका उचित परिचय देने का स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया हुआ कर्त्तव्य त्याग दिया ।

गंगा के तट पर आम नारियल जैसे पत्थर फैले हुए रहते थे, उन्हीं पर एक साधु एक ही स्थान पर अखंड रूप से बैठा दिखाई देता था । किसी श्रद्धावान व्यक्ति ने उसको धूप और हवा से बचाने के लिए उस पर एक रावटी (डेरा) खड़ी कर दी थी । मास्टर महाशय ने हृषीकेश के हजारों साधुओं में से केवल उसी को पसंद किया । वे बारम्बार उसी के पास जाकर बैठा करते थे। मुझे भी दो-तीन बार उसके पास ले गये । यद्यपि मैं उस साधु की बड़-बड़ (बकवाद) का कुछ भी अर्थ न समझ सकने से उकता जाता; किन्तु वापस आते समय मास्टर महाशय मुझे उसी प्रलाप में के किसी विशिष्ट वचन को लेकर उसका गूढ़ अर्थ समझाते रहते थे । उनका वह विवेचन मुझे बहुत आकर्षक एवम् शिक्षाप्रद जान पड़ता; किन्तु साथ ही मन में यह शंका बनी रहती, कि ये सब बातें उस साधु के मन में भी थीं, या मास्टर महाशय ही अपनी भोली श्रद्धा के कारण इतने गहन अर्थ का उस पागल के प्रलाप पर आरोपण कर रहे हैं । एक बार यह शंका भी हुई थी, कि स्वामी विवेकानन्द और उनके गुरु भाइयों ने मिलकर तो कहीं रामकृष्ण परमहंस का इतना महत्त्व नहीं बढ़ा दिया है; किन्तु इस प्रकार की शंका या नास्तिकता क्षण मात्र ही टिक सकी और मुझे अपने आप पर बड़ी लज्जा प्रतीत हुई । जब मैंने परमहंस का भव्य चरित्र एवम् उनके उद्गारों को प्रत्यक्ष रूप से पढ़ा था, तब तो इस प्रकार की शंका के लिए जगह मिलना शक्य ही न था; किन्तु फिर भी मनुष्य का मन ठहरा, वह किस-किस प्रकार की शंका करेगा और कहाँ-कहाँ पहुँच जायगा, यह कौन बता सकता है ? मास्टर महाशय को विश्वास था, कि रावटी में रहनेवाला वह साधु अत्यन्त उच्च कोटि का महात्मा है । मैं उनके इस विश्वास के मार्ग पर नहीं गया; किन्तु फिर भी मास्टर साहब बिल्कुल भोले तो हर्गिज नहीं थे । अपनी डाक लेने कभी-कभी वे खुद ही डाकखाने चले जाते थे । एक दिन वहाँ से आकर धीरे से वे मुझसे कहने लगे यहाँ के पोस्टमास्टर को 'सर' के साथ सम्बोधन करने से वह बहुत खुश होता है और हमारा काम बड़ी शान्ति एवम् शीघ्रता से कर देता है ।

हृषीकेश के बाद मास्टर महाशय कुछ दिन के लिए वृन्दावन जाकर भी रहे थे । इधर मैं भी एक बार प्रेम महाविद्यालय के उत्सव के समय वृन्दावन जा पहुँचा था । उत्सव के अवसर पर उस संस्था के प्राण एवम् प्रख्यात् देशभक्त राजा महेन्द्र प्रताप एकदम सादे वेश में नम्र भाव से इधर-उधर आते-जाते दिखाई देते थे । जिन्होंने उन्हें देखा था, उनके आत्म-विलोपन की भावना पर बड़ा आश्चर्य होता था । मैं मास्टर महाशय को उत्सव में ले गया । उस समय मैंने निश्चय कर लिया था, कि इनका किसी भी रूप में परिचय नहीं दूँगा । हम अपने-अपने स्थान पर जा बैठे। इतने ही में मास्टर महाशय ने उस विशाल जन-समुदाय में से राजा महेन्द्र प्रताप को अचूक रूप से पहचान लिया और धीरे से मेरे कान में कहा कि सफेद साफा बाँधे उस ओर खड़े हुए सज्जन ही राजा महेन्द्र प्रताप हैं न ? वे ही होने चाहिए। मैंने आश्चर्य चकित होकर कहा-हाँ वहीं होंगे; किन्तु इसी के साथ पूछा कि आपने उन्हें कैसे पहचान लिया ? उन्होंने कहा-मुझे अन्दर से प्रतीत हुआ, कि यही वह महापुरुष होना चाहिए । उनके नेत्रों को तो देखिये । उनमें कितनी गम्भीरता लोक-हित विषयक अन्तर्वेदना और एक प्रकार की भव्य शान्ति दिखाई देती है । यह महापुरुष जहाँ कहीं भी जायगा, अपनी भव्यता से ऊँचा ही दिखाई देगा । उत्सव के बाद मैंने मास्टर महाशय से कुछ सार्वजनिक जीवन की बातों पर चर्चा करनी चाही; किन्तु उन्हें वे बातें नहीं रुचीं । उन्होंने अत्यन्त कोमल एवम् नम्र शब्दों में कहा कि तुम जैसे साधकों को ऐसी बातों में मन नहीं लगाना चाहिए । तुम्हें अखण्ड ईश्वर प्राप्ति का ही विचार करना उचित है ।

उनका कथन तो मुझे जँचा; किन्तु मेरा वैराग्य उस प्रकार का न था, इसका मैं क्या करता ?

इसके बाद एक बार जब मैं कलकत्ते में उनसे मिला, तब वे बहुत वृद्ध हो गये थे; किन्तु फिर भी उन्हें जर्जर तो नहीं कहा जा सकता था । उनकी बैठक में दो छोटी-सी चौकियाँ, एक पुस्तक और एक बही (कॉपी) के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था । उन्होंने मेरे लिए मिठाई मंगाकर बड़े आग्रह के साथ खिलाई और मेरी मित्र-मंडली के विषय में आवश्यक पूछ-ताछ भी की । जब उन्हें यह पता लगा कि मैं शांति-निकेतन में जाकर कुछ अध्यापन कार्य करने वाला हूँ, तब उन्होंने मुझे सूचित किया कि हम पहाड़ी में एक शिक्षण संस्था खोलना चाहते हैं; क्या तुम उसमें भाग लोगे ? किन्तु मैं उन्हें अनिश्चित-सा उत्तर देकर वापस लौट आया; क्योंकि उस ससमय तो मुझे टैगोर की संस्था के प्रति ही विशेष आकर्षण था । मास्टर महाशय ने समझा होगा कि यह युवक उस एकान्त को न पचा सकेगा । शिक्षा-क्षेत्र का कीड़ा है और रामकृष्ण मिशन के वैराग्य की ओर इसका झुकाव है; इसलिए इसे वहीं लगा देना ठीक होगा । किन्तु वे खुद सब प्रकार के व्यवसायों से मुक्त हो चुके थे । 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' के अनेक भागों की अनेक आवृत्तियाँ हो चुकी थीं । उनका संशोधन करने के अतिरिक्त और कथा प्रसंग के संवाद को निष्ठावान लोगों के लिए नये-नये ढंग से विशद् करने के सिवाय अन्य किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति में वे भाग नहीं लेते थे ।

मैं उनसे अनेक बार मिला और अनेक परिस्थितियों में मैंने उन्हें देखा; किन्तु प्रत्येक बार मेरे मन पर यही प्रभाव पड़ा कि 'वे एक महान् विभूति हैं । रामकृष्ण परमहंस से इन्हें सचमुच ही कोई ठोस वस्तु प्राप्त हो चुकी है । और उसी के कारण इनके जीवन में अलौकिक एवम् स्थायी परिवर्तन हो गये हैं । उनकी वह शांति, ईश्वर-निष्ठा और पितृ-तुल्य वत्सलता मैं कभी नहीं भूल सकता ।

मैंने रामकृष्ण परमहंस के तीन शिष्यों को देखा, मास्टर महाशय के सम्मुख गुरुदेव की चर्चा आरम्भ करते ही उनके अन्तःकरण से प्रेम की धारा-सी फूट निकल पड़ती और उनके मुख से परमहंस के उपदेश का दुग्धामृत बहने लगता था । स्वामी प्रेमानन्द स्वभाव से सर्वथा नामानुरूप और आचरण की दृष्टि से मूक सेवानन्द थे । उनसे जब गुरुदेव के संस्मरण सुनाने के लिए प्रार्थना की जाती, तो वे एकाग्र होकर कुछ कहने का प्रयत्न करते; किन्तु देखते-देखते ही गद्गद् होकर मुँह से एक शब्द का उच्चारण तक न करते हुए चुप रह जाते; किन्तु स्वामी ब्रह्मानन्द के सम्मुख गुरुदेव की चर्चा आरम्भ करते ही वे क्षणिक गंभीर होकर तत्काल विषयांतर कर देते थे । मानो वे मूक भाव से यह कहते थे कि हमारा वह गूढ़ और पवित्र अनुभव वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता । वे बातें तुम्हारे लिए नहीं हैं। उन अचिंत्य भावनाओं को वाणी के साथ जोड़ना उचित नहीं है ।

मास्टर महाशय को कलकत्ते में रहते हुए जब कभी किसी दवाई की आवश्यकता होती, तो वह भी वे उसी दूकान से लेते, जहाँ से उनके गुरुदेव (श्री रामकृष्ण) मँगवाया करते थे । गुरुदेव को जैसा आहार (भोजन) पसंद था, उसी को ये भी पसंद करते थे । केशवचन्द्र सेन के बाल-मंदिर में गुरुदेव जिस स्थान पर खड़े रहते, उसी स्थान पर वे ठीक इस भावना के साथ कुछ देर खड़े रहते, जिस प्रकार कि हम देव-दर्शन के लिए मन्दिर में जाने पर कुछ देर बैठ जाते हैं । गुरुदेव को जिस प्रकार की और जिस रंग की चादर पसंद थी एवम् जैसे स्लीपर वे पहनते थे, वैसी ही वस्तुएँ उन्हीं स्थानों से मँगवा कर ये भी काम में लाते थे । उनकी वह भक्ति, वह वैराग्य और गृहस्थोचित नमूना देखकर मन में यही भाव उत्पन्न होता था कि भिक्षु संन्यासी होने में क्या सचमुच ही कोई लाभ है और तत्काल ही आधी हल्दी की गाँठ से पीला बननेवाले अथवा सच कहा जाय, जो गेरु धातु के एक टुकड़े से भगवाँ बन जाने वाले संन्यासी की उद्दंड मूर्ति तुलना के लिए आँखों के सामने आ खड़ी होती थी ।

रामकृष्ण मिशन के अनेक ब्रह्मचारी एवम् संन्यासियों को तथा मिशन से बाहर रहनेवाले असंख्य निष्ठावान् लोगों को मास्टर महाशय से प्रेरणात्मक ज्ञान प्राप्त हुआ है । सचमुच ही गत पीढ़ी की वे एक आलौकिक विभूति थे । *

स्वामी माधवानन्द (१)

- डॉ0 निवेदिता बक्शी
कुर्ला (पश्चिम), मुम्बई

सन् १९०८ के नवम्बर का महीना था। पूरे देश में स्वाधीनता का आन्दोलन फैला हुआ था। इसी समय कलकत्ता के हिन्दू होस्टल के थोड़ी ही दूर पर सर्पेन्टाइन लेन में पुलिस ऑफिसर नन्दलाल बैनर्जी को क्रान्तिकारी श्रीशपाल और रणेन गाँगुली ने गोलियों का शिकार बनाया था। इसके थोड़े ही पहले ११ अगस्त को श्री खुदीराम बसु को फाँसी का दण्ड दिया गया था। स्वाधीनता की उमंग अग्नि की तरह फैल रही थी। यही आग की लपट प्रेसीडेन्सी कॉलेज के छात्रों में और हिन्दू होस्टल के छात्रों में भी फैल रही थी। इसी समय दो युवक-रमेशचन्द्र मजुमदार और निर्मल बसु दोनों हिन्दू होस्टल में रहते थे। उन दोनों को 'गुप्त समिति' से छात्र आंदोलन में शामिल होने का आह्वान आया था। एक दिन 'गुप्त समिति' के छात्रों ने आकर कहा कि उसी रात पुलिस हिन्दू होस्टल में छापा मारने वाली है। अतः उनकी दो बंदूकें किसी भी तरह बाहर कहीं छुपा दें। ये दोनों मित्र गये और कलकत्ता के यूनिवर्सिटी इंस्टिच्यूट के पश्चिम ओर के छोटे मकान में बंदूक छुपाकर आ गये। पुलिस ने सचमुच हिन्दू होस्टल पर छापा मारा था।

थोड़े ही दिनों के बाद इस छात्र -'निर्मल' के जीवन में आये श्री महेन्द्रनाथ गुप्त-"मास्टर महाशय" और उनके जीवन में आमूल परिवर्त्तन होने लगा। होस्टल में ही कुछ छात्रों के साथ मिलकर उन्होंने धर्मचक्र की शुरूआत की जिसमें धर्म संबंधी आलोचनाएँ हुआ करती थीं। निर्मल और एसके साथी मास्टर महाशय के घर आने-जाने लगे और वहीं उन्हें रामकृष्ण भावधारा रूपी रत्न की प्राप्ति हुई और उन्होंने जो 'कथामृत' पढ़ना शुरू किया, फिर जीवन के आखरी दिनों तक 'कथामृत' को पढ़ना नहीं छोड़ा। यह निर्मल ही हमारे रामकृष्ण मिशन के नवम् अध्यक्ष बने। नाम पड़ा स्वामी माधवानन्द!

सन् १९०८ में प्रेसिडेन्सी कॉलज और रामकृष्ण मिशन का गहरा नाता था। या यूँ कह सकते है कि पूरे देश के साथ नाता था। आप पूछेंगे-क्यूँ? इसी काल में ५ छात्रों ने रामकृष्ण मिशन से अपना नाता जोड़ा और दो और छात्रों ने देशव्यापी नाम कमाया। इन पाँच छात्रों में थे माधवानन्दजी और उनके भाई दयानन्दजी, राधवानन्दजी जो रामकृष्ण मिशन के उच्चकोटि के साधु थे, यतीश्वरानन्दजी ने जिन्हें संस्कृत में सर्वोच्च अंक पाने के कारण स्वर्णपदक दिया था और अपने जीवनकाल में उन्होंने रामकृष्ण भावधारा का विदेशों में प्रचार किया और स्वामी निर्वाणानन्द (सूर्य महाराज) जो देशभक्ति से ईश्वर भक्ति की तरफ झुके। दो छात्रों के नाम हैं - श्री राजेन्द्र प्रसाद जो हमारे देश के प्रथम राष्ट्रपति बने। वे निर्मल से १ वर्ष आगे थे। और दूसरे थे रमेशचन्द्र मजुमदार जो बहुत बड़े इतिहासकार बने। आप सोच सकते है कि क्या स्वार्णिम काल था उस समय प्रेसिडेन्सी कॉलेज का।

माधवानन्दजी का जन्म १८८८ के १५ दिसम्बर को शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुआ। उनके पिता हरि प्रसाद बसु और माता बिन्दुवासिनी बड़े ही सरल स्वभाव के थे। पिता वर्कील थे। उन्होंने गीता पर एक पुस्तक भी लिखी थी और माता बड़े कोमल स्वभाव की थीं। माधवानन्दजी ज्येष्ठ पुत्र थे। उनके एक भाई और दो बहने थीं। उनके भाई स्वामी दयानन्द जी माँ सारदा के मंत्रशिष्य थे। माता बड़ी स्नेह परायणा और शांत प्रवृत्ति की थी। दानों ही गुण माधवानन्दजी में कूट-कूट कर भरे थे।

निर्मल की शिक्षा शुरू होती है बॉग ऑचर की पाठशाला में। शुरु से ही वे मेधावी छात्र थे। माध्यमिक परीक्षा में पूरे नदिया जिले में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। प्रवेशिका परीक्षा में भी द्वितीय स्थान प्राप्त किया था। आज उन्होंने एफ.ए. में पढ़ने के लिये प्रेसीडेन्सी कॉलेज में दाखिला लिया। पर टायफाईड के रोग से आक्रान्त होने के कारण उन्हें कॉलेज छोड़ना पड़ा। उनकी सेहत बिगड़ती ही चली गयी। सब डाक्टरों ने, वैद्यों ने जवाब दे दिया। मृत्यु बिल्कुल करीब आ गयी थी। यहाँ तक कि उनकी वाक्शक्ति भी चली गयी। आचानक उनके पिता को अपने जन्मस्थान पर एक संन्यासी का स्मरण हुआ। पुत्र के लिए

पिता दौड़कर संन्यासी के पास गये और जीवन दान की याचना की । संन्यासी ने थोड़ी देर तक ध्यान किया और पिता को कहा, "यह युवक मृत्यु को नहीं प्राप्त होगा । यह बहुत दिनों तक जीवित रहकर संसार के लिये कार्य करेगा । और उन्होंने पिता को कुछ जड़ी-बूटी पुत्र को खिलाने के लिये दिया । पंद्रह दिनों के बाद युवक की वाक्शक्ति और प्राणशक्ति लौट आई और परवर्ती जीवन में वे एक उच्चकोटि के साधु बने और संसार के लिये उन्होंने कई कार्य किये ।

अब हम जरा विचार करें । हम क्यूँ माधवानन्दजी की जीवनी का ध्यान करें ? उससे हमें क्या लाभ होगा ? मनुष्य के सामने जब तक आदर्श नहीं रहेगा शायद हमें विश्वास ही नहीं होगा कि मानव यदि चाहे तो किस उच्च शिखर तक पहुँच सकता है। उनके जीवन का आदर्श हमारे जीवन में किस तरह उपयोगी हो सकता है।

आइये हम स्वामी माधवानन्दजी के कुछ गुणों के बारे में विचार करें देखें कि किस तरह हम अपने को बदल सकते हैं ।

१. तात्कालिक बुद्धि :- उस समय निर्मल करीब ११-१२ वर्ष को होंगे । एक बार वे गाँव के पोस्ट ऑफिस में गये। उस दिन किसी कारणवश पोस्टमास्टर नहीं आ पाये थे । उनके बदले पोस्टमास्टर का भतीजा, जिसके लिये अँग्रेजी काले अक्षर भैंस बराबर थी, उनका काम संभाल रहे थे । सरकारी नियम के अनुसार प्रतिदिन का कार्य एक फार्म में लिखकर बड़े पोस्टऑफिस में भेजना पड़ता था । वे फार्म पूरा करने में असमर्थ थे । खासकर Documents sent और Stamps required स्तम्भ में क्या लिखेंगे पता नहीं था । उन्होंने अपनी समस्या बालक निर्मल को बतायी । बालक ने निडर होकर शांति से फार्म पढ़ा और फिर पूछा कि बड़े पोस्ट ऑफिस में भेजने के लिये कुछ संदेश है कि नहीं और कोई स्टैम्प मंगाने की जरूरत है कि नहीं । उन्होंने कहा-'नहीं' । तो निर्मल ने वहाँ पर दो X (क्रास) चिन्ह लगा दिये । बस कार्य सफल हो गया । यह तात्कालिक बुद्धि हममें होना बहुत जरूरी है ।

२. प्रेयस् को छोड़कर श्रेयस् को चुनना :- मेधावी छात्र होने के नाते उनके सामने पूरा स्वर्णिम भविष्य पड़ा हुआ था । पर पूर्व जन्मों के शुभ संस्कारों के कारण उन्होंने संन्यास को वरण किया । उन्हें बंगला में सर्वोच्च अंक मिलने के कारण 'बंकिम पदक' भी मिला था । पर उन्होंने स्वर्णिम भविष्य को पैरों तले कुचल दिया । हममें से कितने लोग ऐसा चयन कर सकते है? सन् १९०८ में वे तीन सहपाठियों के साथ श्री माँ सारदा के दर्शन के लिये जयरामवाटी गये । साथ में सीतापति (राधवानन्द) और अनुकूल सान्याल भी थे । वहाँ से लौटकर निर्मल के मन में तीव्र वैराग्य ने जन्म लिया । भविष्य की उज्ज्वल संभावना को पैरों तले कुचल दिया और स्वामी विवेकानंद की रचनाओं को पढ़ते-पढ़ते, मास्टर महाशय के मुख से 'कथामृत' और 'नारदीय भक्तिसूत्र' सुनते-सुनते उनके मन में वैराग्य की प्रबल इच्छा जागृत हुई । जब मानव की प्रबल इच्छा जागृत होती है तो ईश्वर भी उसकी सहायता करते हैं । निर्मल ने मठ में स्वामी सारदानन्दजी से परिचय पत्र माँगा और शशि महाराज से मिलने के लिए मद्रास चले गये । मद्रास जाकर वे ब्रह्मचारी के रूप में रहने लगे । घर पर वे पिता के लिए एक पत्र छोड़कर आये थे । उन दिनों स्वामी ब्रह्मानन्दजी भी मद्रास मठ में थे । आते ही शशि महाराज ने निर्मल से उनके जीवन का उद्देश्य पूछा। उन्होंने तत्काल कहा-"पवित्र जीवन की कामना । शशि महाराज ने तुरन्त कहा "जो इस युग में श्री रामकृष्ण की शरण में आएगा उसे निश्चय ही ईश्वर दर्शन होगा, जीवन पवित्र होगा । यहाँ पर अगर तुम्हें अर्थ और यश की कामना है तो घर लौट जाओ और एम.ए. की पढ़ाई करो"।

केवल आठ दिनों के बाद निर्मल के पिता ने उन्हें घर लौटाने के लिये एक शिक्षक को मद्रास भेजा । निर्मल को लगा कि वे घर लौटकर माता-पिता को समझाकर फिर आश्रम में लौट आयेगें । शशी महाराज ने निर्मल को जग्रन्नाथपुरी में साक्षात् जग्रन्नाथ का दर्शन करने के पश्चात् घर लौटने को कहा अर्थात् ब्रह्मानन्द महाराज का दर्शन । ब्रह्मानन्दजी ने आशीर्वाद दिया और केवल मुख से इतना कहा-"अहा ! लड़के को जैसे पकड़कर ले गये" ।

इधर बी.ए. का परीक्षा फल निकला और अँग्रेजी में आनर्स के साथ निर्मल ने पास किया । निर्मल को बंगला भाषा में प्रथम स्थान मिलने की वजह से "बंकिम

पदक" मिला । पर हृदय में वैराग्य की अग्नि धधक रही थी । घरवालों के कहने पर उन्होंने एम.ए. में दाखिला लिया और रहने के लिये सिमला स्ट्रीट के एक मेस में गये। बस वहीं उन्होंने गोष्ठी तैयार की । वे सबके अगुआ हो गये । उनके साथ द्विजेन (स्वामी गंगेशानन्द) और यतीन्द्र मोहन मित्र थे । सबके साथ मिलकर वे ईश्वर प्रेम में डूब गये । १९०९ में शशी महाराज ने निर्मल को सलाह दी कि माँ सारदा से मंत्रदीक्षा ले और वही उनके जीवन का श्रेष्ठतम आशीर्वाद था ।

माँ ने निर्मल को देखकर कहा था यह 'कवि' होगा-कवि का अर्थ है "ज्ञानी" और परवर्ती जीवन में वह सच साबित हुआ ।

सारा समय जप ध्यान में बीत जाता था । पाठ्यपुस्तक खोलकर भी नहीं देखते थे । फिर वे पुरीधाम में स्वामी ब्रह्मानन्दजी के पास आशीर्वाद के लिये गये। उन्होंने प्राण खोलकर आशीर्वाद दिया और सिर्फ एक ही बात कही-"संसार अशुभ है और ईश्वर शुभ है ।" देखिये, साधु-संग कितना महत्वपूर्ण होता है ! इसीलिये शंकराचार्यजी ने कहा है-

दुर्लभं त्रयमेवैतत्देवानुग्रह हेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः ।।

और निर्मल के जीवन में तीनों ही एक साथ थे। पिता ने फिर किसी को निर्मल को घर वापस लाने भेजा और उन्होंने उन्हें एम.ए. पूरा करने को कहा । उन्होंने विलायत भेजने की प्रतिश्रुति भी दी पर सब कुछ व्यर्थ हुआ। लक्ष्य में अटल । हमारा पूरा जीवन शब्दों में ही गुजर जाता है क्या हम निर्मल से यह मानसिक अटलता की शिक्षा नहीं ले सकते है ?

इसी समय निर्मल के हाथों लगी स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक Inspired Talks ने जैसे आग में घी का काम किया और तीसरी बार एम.ए. छोड़कर मठ चले आये । समय था १९१० की जनवरी का महीना । फिर पिता ने उनके बड़े मामा वैद्यनाथ जी को निर्मल को संसार में लौटाने के लिये भेजा। वे स्वामी प्रेमानन्द के शिक्षक थे । इस कारण स्वामी प्रेमानन्द निर्मल को बार-बार घर लौटने के लिये कह रहे थे । पर स्वामी शुद्धानन्द जी (सुधीर महाराज) एक खम्भे के पीछे खड़े होकर बार-बार घर जाने के लिये मना कर रहे थे । निर्मल बड़े मामा के साथ लौट गये और तीन-चार दिन के बाद वापस मठ में हमेशा के लिये लौट आये ।

धीरे-धीरे उनका जीवन सुगठित होता गया । उन्हें श्रीरामकृष्ण के बारह शिष्यों का सान्निध्य प्राप्त हुआ । और माँ सारदा से उन्होंने मंत्रदीक्षा प्राप्त की थी । इस तरह उनके जीवन में साधु संग का अपूर्व मेल था ।

३. महापुरुषों के वचन को जीवन में अपनाना :- यह कदाचित् ही कहीं देखने को मिलता है । हम जीवन में कितने ही महापुरुषों के सान्निध्य में आते है पर क्या उनके वचनों को जीवन में ढालने की कोशिश करते है? नहीं । यहीं पर हमें निर्मल महाराज के जीवन दर्शन से सीख लेनी होगी । १९१० में निर्मल स्वामी विरजानन्दजी के साथ जयरामवाटी गये । उस समय वे मायावती अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष थे । माँ ने कहा था ठाकुर ही सब कुछ है साधन भजन सबके लिये सरल नहीं है । वह ठंडे दिमाग से करना पड़ता है और संघ का हर कार्य ठाकुर की सेवा है । यह बात निर्मल के गंभीर अंतरतम तक पहुँच गयी। एक बार की बात है कि वे कमरे में जप-ध्यान कर रहे थे। एक सेवक संघ के किसी कार्य को ले कर उनके पास आये थे । उन्हें जप-ध्यान में लीन देखकर उन्होंने उनके लिये घंटों प्रतीक्षा की । जब माधवानन्दजी आँखें खुली तो उसे आने का कारण पूछा । तो कहीं पर हस्ताक्षर लेने थे । उन्होंने संन्यासी को खूब डाँटा । बोले, क्या जप ध्यान संघ के कार्य से ज्यादा जरूरी है ? कितनी ऊँची बात है यह !

४. नियमवर्तिता :- माँ सारदा की बातों को उन्होंने हृदयंगम कर लिया था। माँ कहती थी हम तो स्त्री है संसार में काम करना ही पड़ेगा । यह काम करते-करते हम जप ध्यान कर लेते है। कभी चावल का पानी आग के ऊपर रखते हैं । जब तक चावल का पानी उबल नहीं जाता । उसी प्रकार दाल का पानी चढ़ाकर फिर जप कर लेते हैं । निर्मल महाराज ने भी जप ध्यान को कभी नहीं छोड़ा चाहे वे ट्रेन में चाहे अस्वस्थ हो । ठीक सवेरे-संध्या

जप ध्यान करते थे। कभी नियमों को भंग नहीं करते थे। अगर जप ध्यान के बीच में संघ का कार्य आ जाता उसे निपटाकर पुनः जपध्यान करते । यहाँ तक कि अंतिम शय्या पर भी लेटे हुए उन्होंने जप-ध्यान नहीं छोड़ा ।

५. साधु संग का आनंद :- सन् १९१६ में वे स्वामी ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द जी के साथ बंगला देश गये । मैमनसिंह, ढाका और नारायणगंज में दोनों महापुरुषों के संग ने उनके जीवन में उच्चकोटि का आनंद प्रदान किया था। स्वामी ब्रह्मानन्दजी का ठाकुर की अपूर्व आरती करना उनके हृदय को छू गया था । यह आरती हुई थी मैमनसिंह के नवनिर्मित पुस्तकागार में। उन दोनों महापुरुषों की आज्ञा शिरोधार्य करके 'सेवाधर्म' के ऊपर निर्मल महाराज ने अपूर्व भाषण दिया था । ढाका में आनन्द लहरी साथ-साथ चली एक दिन राजा महाराज से मिलने ढाका कॉलेज के अध्यापक विस साहब आये । राजा महाराज ने निर्मल को उनसे मिलने के लिये कहा । श्रीठाकुर की बातें सहज और सरल तरीके से 'विस साह' को समझाने पर राजा महाराज निर्मल से अति प्रसन्न हुए और निर्मल ने ढाका विश्वविद्यालय के कर्जन हॉल में भाषण भी दिया । वहीं स्वामी प्रेमानन्दजी का भी ओजस्वी भाषण हुआ था । वहाँ से वे नाग महाशय-ठाकुर के परम भक्त-की जन्मभूमि देवभोग ग्राम में गये । वहाँ उन दोनों महापुरुषों की मनोहर नृत्यभंगिमा देखकर उनका जीवन धन्य हो गया। फिर वहाँ से नारायणगंज गये । वहाँ भी निर्मल ने अपूर्व भाषण दिया। महापुरुष के सान्निध्य ने उनके जीवन में आमूल परिवर्तन कर दिया ।

वहाँ से लौटकर राजा महाराज के कहने पर शशी महाराज की सेवा के लिये वे मद्रास गये । शशी महाराज निर्मल से पूर्व परिचित की तरह व्यवहार करते थे । उनके सान्निध्य से कर्मयोग की शिक्षा और निष्ठा के अपूर्व योग का समन्वय उनके जीवन में आया ।

१९१० में वे मायावती आश्रम गये और उन्हें १९११ में ब्रह्मचारी के रूप में दीक्षित किया स्वामी विरजानन्दजी ने । निर्मल वहाँ दो साल रहे। वहीं उन्हें शशी महाराज की महासमाधि का दुःखद समाचार प्राप्त हुआ और अब उन्हें और शशि महाराज के विशुद्ध प्रेम का आभास होने लगा ।

६. तपस्या :- हम हमेशा ही शिकायत करते रहते हैं कि साधना पथ पर आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं पर क्या हम जीवन में तपस्या के लिये तैयार हैं? सात दिन अगर अच्छे से जप ध्यान किया तो फिर अगला सात दिन आराम । पर स्वामी माधवानन्दजी कठोर तपस्वी थे । तपस्या उनके लिये सहज अवस्था थी । १९१२ में वे कनखल हरिद्वार ऋषिकेश में तप करने के लिये गये थे। परवर्तीकाल में तब वे संघ के सचिव थे । वर्ष में १ महीना या अधिक अवसर लेकर तप करने के लिये गये थे। वे समय-समय पर मायावती, काशी, कालिंगपंग, केदारनाथ और बदरी नारायण चले जाते थे और ध्यान धारणा में डूब जाते थे। जब तक जीवन में तपस्या नहीं होगी। तबतक जीवन सोना बनकर नहीं निखर सकता।

७. सेवायोग :- तपस्या के बाद जीवन में कुछ कर दिखाना है । सेवाधर्म क्या है? जीवों की शिव ज्ञान से सेवा। यह कहना आसान है पर जीवन में लाना अति कठिन है। अगर लाया तो भी अहंकार आ जाता है। १९१३ में वर्धमान, हुगली बाकुड़ा, मेदिनीपुर जिले की बाढ़ में निर्मल महाराज ने प्राण खोलकर लोगों की सेवा की।

इसके पश्चात् निर्मल महाराज आ जाते है उद्बोधन पत्रिका के कर्मी के रूप में वहीं उन्हें सारदानन्द और शुद्धानन्दजी से पत्रिका के सम्पादन के विषय में कई सीखे मिलती हैं । जीवन में अगर आगे बढ़ना है तो पग-पग में हमें सीखना पड़ेगा । "ठाकुर कहते थे कि जब तक जिन्दा हूँ तब तक सीखूँगा" । यही बात निर्मल महाराज के जीवन में भी देखने को मिलती है । साथ-साथ माँ सारदा का वे नित्य दर्शन करते थे ।

१९१८ में उन्हें सारदानन्दजी की सेवा का सुअवसर मिला । १९१६ में उन्होनें राजामहाराज को संन्यास की दीक्षा ली । उनकी उम्र थी २९ वर्ष और उनका नाम निर्मल से माधवानन्द पड़ा । वहाँ से वे कनखल गये । उन्हें सान्निध्य प्राप्त हुआ तूरीयानन्दजी का जो वेदान्त की प्रतिमूर्त्ति थे । उनके पास बैठकर शास्त्र अध्ययन करने का मौका मिला । तूरीयानन्दजी ने श्री माधवानन्दजी के बारे में पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी कि वे बहुत उच्चकोटि के साधु बनेंगे ।

१९१६ में काशी सेवाश्रम के नवर्निमत घरों के उपलक्ष में साधु समागम हुआ शिवानन्द, प्रेमानन्द, तूरीयानन्द और लाटू-महाराज । साधुओं का मेला था । स्वामी माधवानन्दजी के उस समय गुरुभाइयों के बीच अपूर्व प्रेम का आभास हुआ । १९१७ में वे गये मायावती आश्रम। वहाँ उस समय प्रज्ञानन्दजी थे । पर १९१८ में उनके अचनाक तिरोधान के बाद माधवानंदजी को प्रबुद्ध भारत का अध्यक्ष पद संभालना पड़ा । उम्र थी केवल तीस वर्ष वह समय मायावती आश्रम का स्वार्णिम काल था । साधुगण सब कार्य करते थे । पेपर काटना, सिलाई करना, गोंद से चिपकाना, खाना बनाना आदि'आदि और माधवानन्दजी सभी कार्यों में सहायता करते थे और सब से कंधे से कंधा मिलाकर काम करते थे-यहाँ तक कि रोटी बनाते थे और हर कार्य निष्काम भावना से करते थे ।

१९२१ में वे स्वामी ब्रह्मानन्दजी की जन्मतिथि के उपलक्ष में काशी आये । खूब बड़ा उत्सव था। उसी समय की एक घटना निर्मल महाराज के जीवन में काफी मायने रखती है । एक दिन सवेरे स्वामी शुद्धानन्द, माधवानन्द, स्वामी यतीश्वरानन्दजी स्वामी ब्रह्मानन्दजी के चरणों में उपस्थित हुए । स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने यतीश्वरानन्दजी से पूछा कि साधन भजन कैसा चल रहा है ? उन्होंने उत्तर दिया बहुत काम करना पड़ता है इसलिये विशेष समय नहीं मिल पाता है । महाराज ने उत्तर दिया-"जप के लिये समय नहीं मिलता है यह हमारे मन की गलत धारणा है। मन की चंचलता से इस प्रकार होता है Work and Worship कर्म और साधना साथ-साथ चलनी चाहिये और मन को तैयार करना होगा ।" इस उपदेश ने माधवानन्दजी के जीवन में गहरा प्रभाव डाला था । अगर हम सिर्फ यही एक उपदेश जीवन में उतार लें तो हमारा जीवन कितना धन्य हो जायेगा?

उसी समय सारदानन्दजी से सेवाधर्म के विषय में बातें चल रही थी । उन्होंने कहा कि "हमारे देश में यह गलत धारणा है कि जप ध्यान कर्म से कहीं बड़ा है इसलिये सभी जप-ध्यान करते है। जप-ध्यान करते समय अगर मन नीचे आ जाता है तो भी हम समझते है कि जप-ध्यान सेवा से ज्यादा महत्वपूर्ण है पर स्वामीजी की बातें कभी विफल नहीं हो सकती है । इसलिये दोनों को भी जीवन में लाना होगा । जो ऐसा करने में सफल नहीं हो सकता उसका न तो जप-ध्यान होगा न वह लोगों की सेवा करने के योग्य होगा ।"

इन दोनो उपदेशों का प्रभाव उनके जीवन में पड़ा ।

१९२६ में माधवानन्दजी ने भारत के कई स्थानों का भ्रमण किया और उसी समय राजकोट में मिशन शाखा केन्द्र के लिये अनुरोध किया । १९२६ में राजकोट आश्रम की स्थापना की जो आश्रम अब इतना फल-फूल गया है इतना सेवाकार्या कर रहा है तो उसकी नींव स्वामी माधवानन्द जी ने फरवरी महीने में १९२६ सन् में डाली थी। इसी समय उन्होंने अद्वैत आश्रम से हिन्दी मासिक पत्रिका का भी प्रकाशन शुरु किया । उनके सहयोगी थे सूर्यकान्त त्रिपाठी (निराला) । इसी कार्य को लेकर स्वामी दयानन्द १९२३ १ अक्टूबर को मायावती से अपनी परिक्रमा शुरु की । श्यामलाताल कानपुर फतेपुर आदि शहरों में घर-घर घूमकर उन्होंने धन इकट्ठे किये ।

स्वामी माधवानन्द के अध्यक्ष - काल में प्रबुद्ध भारत के सम्पादक थे स्वामी यतीश्वरानन्द तथा राधवानन्द और कार्यकर्त्ता थे विशुद्धानन्द, अभयानन्द, विविषानन्द दयानन्द, निखिलानंद वीरेश्वरानन्द, पवित्रानन्द । सभी परवर्तीकाल में एकसे एक बढ़कर एक उज्ज्वल नक्षत्र हुए । इतने कर्मव्यस्त जीवन में भी माधवानन्दजी ने अपनी तपस्या जारी रखी । उसी समय उन्होंने निखिलानन्दजी को ठाकुर के विषय में अंग्रेजी में लिखने के लिये प्रोत्साहित किया और उस लेख का संशोधन भी किया ।

८. **सत्य का पालन** :- उन्होंने पग-पग पर सत्य का पालन किया । गर्मियों के दिन में वे मायावती में थे । आश्रम के पास चिकित्सालय था । वह पाईन के वृक्षों से तैयार किया गया था । पास में ही लकड़ी का गुदाम था। एक साधु की असावधानी से गुदाम में आग लग गई और थोड़े के लिये आश्रम और अस्पताल जलने से बच गये । जब माधवानन्दजी को पता लगा तो आश्रम के साधु को पूरी घटना बिना हेर-फेर के लिखने को कहा ।

और एक दिन की बात है । वे सचिव थे । बेलुड़मठ के प्रधान कार्यालय में रहते थे । बिजली नहीं थी ।

चारों तरफ अंधेरा था । रात को ११ बजे एक ब्रह्मचारी लालटेन लेकर उनके कमरे में पहुँचे उनके व्यवहार के लिये। माधवानन्दजी बोले-"अभी-अभी संतोष भी एक लालटेन लाया था । मैंने उसे नहीं कह दिया । तुम इसे लेकर जाओ । ब्रह्मचारी फिर भी लालटेन वहीं छोड़कर जाने लगा और कहा आप मच्छड़दानी लगा लेंगे फिर मैं वापस ले जाऊँगा । इस पर माधवानन्दजी ने कड़े स्वर में कहा, "तुम मुझे सत्य से अलग नहीं कर सकते हो । तुम इसी वक्त लालटेन लेकर चले जाओ" ?

६. लिलिक्षा :- वे अपने शरीर के कष्ट या व्याधि के बारे में किसी से भी नहीं कहते थे हँसते-हँसते सहन करते थे। यह उन्होंने शशिमहाराज से सीखा था । उन्हें दीर्घ समय तक 'एक्जिमा' नाम का चर्म रोग था । मायावती में उन्हें बहुत कष्ट होता था । दोनों पैरों को लकड़ी के ऊपर उठाकर सोते थे । कभी-कभी व्याधि इतनी बढ़ जाती थी कि उन्हें केले के पत्ते के ऊपर सोना पड़ता था । अगर कोई इस बारे में पूछता तो कहते मैं अच्छा हूँ । शरीर का धर्म है क्षय होना । हँसी खुशी से वे शरीर की व्याधि सहन करते थे ।

एकबार की बात है । वे खाट से गिर पड़े । सेवक उस समय किसी काम से बाहर गया था । उनकी कॉलर बोन (हड्डी) टूट गयी थी । वे खाट पर कोशिश करने के बावजूद चढ़ नहीं सके । उन्हें तीव्र यंत्रणा हो रही थी। पर न तो उन्होंने किसी को बुलाया। न चिल्लाये वहीं बैठकर जप करने लगे। काफी समय के बाद सेवक ने आकर उनकी हालत देखी तो उसे बहुत पश्चाताप हुआ । धीरे से महाराज को उठाया । बाद में एक्स-रे करने पर पता लगा कि कालर बोन टूट गयी थी। इतनी धैर्य शक्ति कैसे उन्होंने पायी ? क्या हम यह बात उनसे नहीं सीख सकते हैं ?

१९२२ में वे रामकृष्ण मिशन के ट्रस्टी निर्वाचित हुए । उनके साथ स्वामी विशुद्धानन्दजी भी थे । १९२६ में कलकत्ते में रामकृष्ण मिशन का सम्मेलन हुआ । उत्सव १ अप्रैल से ५ अप्रैल तक चला। माधवानन्दजी ने ज्वलंत भाषण देकर सब को मंत्रमुग्ध कर दिया था ।

१९२७ में वे विदेश गये । सन् फ्रान्सिसको में दो वर्ष रहकर वापस आ गये । उस समय उनके भाई दयानन्दजी भी वहीं थे । दोनों भाइयों के गीता और वेदान्त कक्षाओं की खूब चर्चा होती थी । स्वामी दयानन्दजी ने सनफ्रान्सिसको में हिन्दू मंदिर का दायित्व लिया था।

१९२९ में श्री माधवानन्दजी रामकृष्ण मठ के सम्पादक निर्वाचित हुए । कुछ वर्षों तक उन्होंने स्वामी विरजानन्द के साथ भी सहसंपादक के रूप में काम किया । करीब २५ वर्षों तक वे सचिव के रुप में बेलूरमठ में रहे ।

१९३६-१९३७ सन् के बीच में फिर से रामकृष्ण मिशन का वार्षिकोत्सव हुआ और उन्होंने उसे भी बहुत कुशलता से संभाला । १९३८ में स्वामी शुद्धानन्द का स्वर्गवास हो गया। वे माधवानन्द के परम गुरु और पथ प्रदर्शक थे। जो उपदेश स्वामी प्रेमानन्द या राखाल महाराज से नहीं समझ सकते थे उसे समझने के लिये शुद्धानन्द स्वामी के पास जाते थे । स्वामी शुद्धानन्दजी ने उन्हें एक पेन उपहार में दी थी । जिसे वे यत्नपूर्वक अपने पास रखते थे ।* (अगले अंक में समाप्य) ।

जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे एक ही जन्म में हजारों वर्ष का कार्य करना पड़ेगा । वह जिस युग में जन्मा है, उससे उसे बहुत आगे जाना पड़ेगा, किन्तु साधारण लोग केवल किसी तरह रेंगते-रेंगते आगे बढ़ सकते हैं । अनेक ईसा और बुद्ध की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई हैं ।

– स्वामी विवेकानन्द

बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविन्द दियो बताय

- डॉ० उषा वर्मा, छपरा

भारतीय मनीषा में ऋषि दो प्रकार के माने गये है :- ब्रह्मश्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ । ब्रह्मश्रोत्रिय वे, जिन्होंने गुरु से सुनकर और वैदिक ग्रन्थों को पढ़कर ईश्वर के विषय में ज्ञान प्राप्त किया है । यानी कि जिन्होंने ईश्वर के विषय में मात्र सुना है, पढ़ा है, किन्तु, जाना नहीं है ईश्वर को । इस प्रसंग में उनकी अपनी कोई अनुभूति नहीं है । ब्रह्मनिष्ठ वे हैं, जिन्होंने ईश्वर को जाना है । प्रत्यक्ष अनुभव किया है । जिनकी अपनी निजी अनुभूति है ईश्वर के संदर्भ में । श्रीरामकृष्ण परमहंस ब्रह्मनिष्ठ श्रेणी के ऋषि रहे हैं । ईश्वर के उतने ही करीब-प्रत्यक्ष, जितने कि अन्य सांसारिक प्राणियों के । यह ईश्वर के प्रति उनका अनुभव जन्य होना ही है कि नरेन्द्रनाथ (बाद के विवेकानन्द) जैसे प्रखर, तार्किक और एकान्त जिज्ञासु को एक झटके से निरूत्तर कर दिया था इन्होंने बस, एक छोटी-सी घटना घटी थी और नरेन्द्र नाथ के जीवन में छलांग घटित हो गया था । नरेन्द्र जैसे अन्य सभी साधु-संतों से अपनी आन्तरिक जिज्ञासा से प्रेरित होकर पूछा करते थे उसी तरह श्री रामकृष्ण से भी पूछ बैठे "आपने ईश्वर को देखा है ?"

श्री रामकृष्ण ने छूटते ही उत्तर दिया था, "हाँ, देखा है । ठीक उसी तरह जैसे तुम्हें देख रहा हूँ । चाहो तो तुम्हें भी दिखा सकता हूँ ।" एकदम बन्द आँख खोल देने वाली स्थिति थी । सरल, सटीक, निर्भीक, उत्तर था । आईना दिखा देने वाली बात हो गई थी । "जब जरा गर्दन झुकायी देख ली" वाली स्थिति उतर आई थी । चिलमन तार-तार हो गया था । अनुभूति की ऊष्मा के समक्ष तर्क का हिम पिघलने लगा था । बस उसी क्षण नरेन्द्र विवेकानन्द बनने की दिशा में प्रस्थान कर गये थे । और फिर तो बनते ही गये.....। ठाकुर के परम प्रिय आत्मवत् शिष्य नरेन्द्र स्वामी विवेकानन्द के रूप में विश्व के रंगमंच पर उभरे । समाधि के उच्चतम शिखर को स्पर्श किया । अपने भाषणों से विदेशों में धूम मचा दी । विदेशियों की कलम से 'साइक्लोनिक संत' की उपाधि पाई । वेदान्त की जीवन्त व्यख्याएँ कीं । विदेश में भारत का नाम रौशन किया । अपने ही घर में गुम हुई वस्तु को नये सिरे से खोजकर घर वालों-स्वदेशियों को चमत्कृत कर दिया । जागरण का शंखनाद किया । स्वाभिमान पर पड़ी धूल उड़ा दी ।

ऋषि का एक और नाम द्रष्टा भी है । "ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः"। वे कल्पना के आधार पर, अनुभव के आधार ऋचाएँ नहीं कहते । ऋचाएँ रची नहीं जातीं । बस, रच जाती हैं । ऋषि देखते हैं । महसूस करते हैं । उनका अनुभव घनीभूत होता है और फिर आकार लेकर, शब्दों में ढल जाता है । यही ढल जाना ऋचा होना है । यही मंत्र है । मंत्र यानी देवता 'एव तु देवता ।' देवता मंत्र के अधीन हैं :- "मंत्राधीन च दैवतम्" का यही अर्थ है कि मंत्र देवता है । देने की अपार शक्ति है उसमें । शक्तिपुँज है वह । देय शक्ति से आवेष्टित है । शक्ति संवर्द्धन का मूल स्रोत भी है । आधुनिक युग के ऋषि श्री रामकृष्ण परमहंस ऐसी अनेक ऋचाओं के द्रष्टा रहे हैं । यों तो उनकी सभी ऋचाएँ जीवन की दिशा और दशा बदलने में सक्षम हैं; किन्तु, उनमें से एक ऋचा तो मानो मुकुटमणि है अपनी ऊँचाई, अपनी गहराई, अपने विस्तार और सनातन शाश्वत प्रासंगिकता के कारण "जतो मत ततो पथ"। यानी जितने मत हैं उतने पथ हैं प्रभु तक जाने के । यों यह कोई नितांत नया मंत्र नहीं है । हमारे प्राचीन ऋषियों ने शब्द भेद से बार-बार इस बात की पुष्टि की है कि परमात्मा एक है और उसी 'एक' परमात्मा को विद्वानों-ज्ञानियों ने अनेक नाम दिये हैं :-

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"

(ऋ. १.१६४.४६ ।। अथर्व. ९.१०.२८ ।।)

किन्तु, श्री रामकृष्ण की विलक्षणता और मौलिकता इस बात में है कि इन्होंने इस 'सत्य' पर अपने व्यक्तिगत अनुभव की मुहर लगाई । यह प्रमाणित किया कि प्राचीन से लेकर आज तक संसार के जिन सभी ऋषियों, आचार्यों और अवतारों ने जिन-जिन भावों-पथों का अवलम्बन लेकर

ईश्वरोपलब्धि की है वे सब-के-सब सम्पूर्णतया सत्य हैं। साधक आज भी उन पथों से चलकर ईश्वर को पा सकता है। इसको प्रमाणित करने के लिए श्रीरामकृष्ण ने एक प्रयोग किया। ईसाई पथ, इस्लाम पथ, सूफी पथ के अतिरिक्त सनातन धर्म के विविध प्रचलित पथों से परमात्मा का साक्षात्कार किया और तब इस बात की घोषणा की कि सभी रास्ते सही हैं। सब परमात्मा तक ले जाते हैं। सभी पथों का एक ही चरम लक्ष्य है-हमारे भीतर की आध्यात्मिक चेतना को प्रदीप्त करना। परमात्मा एक है। धर्माचार अनेक हैं। वस्तुतः धर्माचार रास्ते हैं, पथ हैं। सीढ़ियाँ हैं। "नदी एक घाट बहुतेरे" (तुलसी) चाहे जिस घाट को चुन लो, जिन सीढ़ियों से चलना शुरू करो, सबसे परमात्मा उपलब्ध होता है। सीढ़ियों का महत्व सिर्फ इतना है कि वे परमात्मा तक ले जाती हैं। यह हो सकता है कि किसी घाट की सीढ़ियाँ कुछ अधिक सुन्दर, अधिक सुविधाजनक हों और किसी घाट की अपेक्षाकृत कुछ कम सुन्दर, कुछ कम सुविधाजनक किन्तु, परमात्मा की प्यास से आकुल-व्याकुल पथिक के लिए सीढ़ियाँ मात्र सीढ़ियाँ हैं। सरोवर तक, पानी तक, लक्ष्य तक, परमात्मा तक पहुँचने का साधन मात्र।

एक ही बात बहुत दिनों तक बार-बार सुनते-सुनते कभी-कभी उसकी अर्थवत्ता खो जाती है। मात्र शब्द रह जाते हैं। अर्थ गुम हो जाता है। उसकी संप्रेषणीयता कम हो जाती है। परमात्मा के प्रसंग में जब-जब यह स्थिति आती है शब्दों पर नया मुलम्मा चढ़ाने के लिए, सम्यक् अर्थबोध के लिए किसी राम, किसी कृष्ण, किसी बुद्ध, किसी महावीर किसी मोहम्मद, किसी ईसा, किसी गुरु नानक की आवश्यकता होती है। इसी अर्थ में गीता में :-

"यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥

की बात उठाई थी श्री कृष्ण ने - श्री रामकृष्ण का युग भी धर्म के विघटन का युग था। शोपेण हावर और नीत्से के दर्शन, डार्विन के वैज्ञानिक जड़वादी सिद्धान्त, मैकाले की शिक्षा नीति और अँगरेजों की साजिश ने धर्म पर चौतरफा प्रहार किया था। धर्म विवाद का विषय था। कठघरा में था। बहस का मुद्दा था।

अत्यन्त सन्देहास्पद और दयनीय दशा थी धर्म की। अनेक मत मतान्तर विकसित हो चुके थे, हो रहे थे। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, ब्रह्म समाज, राधास्वामी मत, नारायण स्वामी मत आदि-आदि अनेक मत-सम्प्रदाय गठित हो चुके थे और सब के सब अपने आप को स्वतंत्र और सर्वश्रेष्ठ घोषित करने की प्रक्रिया में व्यस्त थे। पढ़ा-लिखा व्यक्ति अपने को धार्मिक कहने में शरमाने लगा था। धर्म अंधविश्वास और आडम्बर का पर्याय बन गया था। तभी अवतरण हुआ था श्री रामकृष्ण का। वह भी एक अनपढ़ गँवार और भौतिक दृष्टि से नितान्त दरिद्र के रूप में। यह महत इसलिए कि उनको देखकर यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाय कि स्कूल-कॉलेज की वर्त्तमान शिक्षा वास्तविक शिक्षा नहीं है और न भौतिक दरिद्रता वास्तविक दरिद्रता है। फिर इन्होंने सभी प्रचलित धर्मों-मतों पर बारी-बारी से प्रयोग किया - अपने मन और अपनी देह को प्रयोगशाला बना कर। हिन्दू धर्म की सभी साधनाएँ कीं। उनकी चरम स्थिति की उपलब्धि भी की। मूर्तिपूजा की। माँ काली का साक्षात् दर्शन पाया। वैष्णव साधना की तो श्रीराम, माता सीता और श्री हनुमान तथा राधा-कृष्ण के दर्शन प्राप्त हुए। निराकार ब्रह्म की साधना भी की। 'निर्विकल्प समाधि' उपलब्ध हुई। इस्लाम पथ से साधना की तो मोहम्मद साहब के दर्शन हुए। ईसाई धर्म की साधना की तो ईसा को साक्षात देखा। उनसे बातें कीं। सभी आध्यात्मिक पथ इन्हें परमात्मा तक पहुँचाते रहे और तब वह क्षण आया जब इनके कंठ से यह ऋचा फूटी-"जतो मत ततो पथ।"

यह प्रयोग, यह साधना संसार को सच्चाई समझाने का एक नायाब तरीका था। इनके पूर्व के ऋषियों ने एक परमात्मा की बात तो कही थी, सभी धर्मों को उसी 'एक' तक पहुँचने का रास्ता भी कहा था, किन्तु, अपने लिए किसी-न-किसी एक पथ का ही चयन किया था - परमात्मा की उपलब्धि के लिए। फलतः उनकी उद्घोषणा में सामान्य जन को अनुभव जनित प्रामाणिकता का अभाव दिखता

होगा । उनके प्रति श्रद्धा के बावजूद उनकी उद्घोषणा की सच्चाई के प्रति मन के किसी कोने में शंका भी उठती होगी । श्री रामकृष्ण ने अपने प्रयोग से तमाम शंकाओं को निरस्त कर दिया । वेद वाक्य पर अनुभव की प्रामाणिकता की मुहर लगा दी । यों श्री रामकृष्ण स्वयं जानते थे कि सभी पथ परमात्मा तक जाते हैं । किन्तु, मात्र इनका जानना पर्याप्त नहीं था । जग को जनाना था । दिखाना था । समझाना था । यह जगत के प्रति इनका मातृभाव था कि इन्होंने स्वयं चल कर प्रयोग कर के दिखाया । जैसे माँ जानती है कि घर के बाहर की ओर खुलने वाले सभी दरवाजे आँगन तक ले जाते हैं । किन्तु बच्चे को समझाने के लिए वह स्वयं चल-चल कर दिखाती है । कभी-कभी लुका-छिपी खेल के बहाने बच्चे को साथ लेकर इधर से उधर निकलती है । माँ का यह आचारण बच्चे को पूरी तरह विश्वास दिलाने के लिए होता है श्री रामकृष्ण ने भी सभी प्रचलित पथों से चलकर दिखाया था हमें विश्वास दिलाने के लिए कि परमात्मा एक है । सर्वत्र है । उसको लेकर लड़ने-झगड़ने का न कोई कारण है और न कोई औचित्य ही ।

श्री रामकृष्ण द्वारा पथों को लेकर लड़ी जाने वाली लड़ाइयों के निरस्त्रीकरण के बाद भी हमने परमात्मा तक जाने वाली सीढ़ियों का इस्तेमाल इस्पाती दीवार की तरह करना जारी रखा है । सीढ़ियों को खेमों का रूप दे दिया गया है । सीढ़ियाँ शत्रु-शिविर में तब्दील कर दी गई हैं । हमें परमात्मा की - सरोवर की - पानी की कोई परवाह नहीं है तभी तो हम अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर अपनी-अपनी सीढ़ियों पर जम गए हैं मुकाबले के लिए ।

सवाल उठता है-मुकाबला है किससे ? परमात्मा से ? नहीं-नहीं, उससे तो हो ही नहीं सकता । उससे कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती । तो फिर उस साधक पथिक से है जो परमात्मका की ओर जा रहा है ? नहीं, इस पर भी विश्वास नहीं होता । वह साधक पथिक भी तो उसी परमात्मा का अंश है । जो परमात्मा से नहीं लड़ सकता वह उसके अंश से भी नहीं लड़ेगा । जो सरोवर से नहीं लड़ सकता वह भला बूँद से क्यों लड़ेगा ? नहीं, यह भी संभव नहीं लगता । जरूर कहीं कोई गड़बड़ी हो गई है । कोई बहुत बड़ी गलतफहमी । उठी हुई तलवारें, तनी हुई लाठियाँ, भरी हुई बन्दूकें तो साफ-साफ दीख रही हैं । किन्तु, वह शत्रु नहीं दीख रहा है जिसके खिलाफ इतनी तैयारियाँ हुई हैं । वस्तुतः वह शत्रु बाहर कहीं है भी नहीं । हमें भ्रम हो गया है । श्री रामकृष्ण ने इसी भ्रम के निवारण के लिए अवतरण की जहमत उठाई थी ।

भ्रम निवारण तो होना ही है। आज नहीं तो कल । कल नहीं तो परसों । रस्सी को बहुत दिनों तक साँप नहीं समझा जा सकता । प्रसिद्ध फ्रांसिसी भविष्यवक्ता नास्त्रेद्मस (१५०३-१५६६) की कई भविष्वाणियाँ भी इधर संकेत करती है''..... भारत अध्यात्म के क्षेत्र में विश्व विजेता बनेगा..... सब धर्म एक हो जायेंगे.... पूरब का एक गैर ईसाई नेता पूरी धरती का गुरु होगा और अपनी महानता के बल पर सर्वत्र छा जायेगा ।

वस्तुतः वर्त्तमान की त्रासदी हम उसी सुखद भविष्य की आशा में झेल रहे हैं । जब हम सब तहे दिल से यह महसूस करने लगेंगे कि धर्म का सीधा संबंध स्वभाव की श्रेष्ठता से है, कि सच्चा धार्मिक हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, सिख, ईसाई आदि नहीं होता, मात्र धार्मिक होता है..... ... कि सभी धर्मों में एक ही परमात्मा की अभ्यर्थना की गई है । ''गोविन्द'' का सही पता बतलाने वाले परम गुरु श्री रामकृष्ण का प्रयोग व्यर्थ नहीं जा सकता । ❋

भक्ति का फल

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।

हे अर्जुन ! इस प्रकार जो मेरे दिव्य जन्म और कर्म को भली-भाँति जान लेता है वह देह त्याग कर पुनर्जन्म को नहीं पाता, अपितु मुझे प्राप्त करता है । - गीता ।

यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य ने शिक्षा, धन एवम् अपने प्रयासों की सहायता से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति-प्रगति प्राप्त की है । लगता है उसके लिए कुछ न करने तथा कुछ नहीं पा लेने की कोई सीमा नहीं है । किन्तु उसकी इन सारी विशाल उपलब्धियों के बावजूद एक महत्वपूर्ण वस्तु नहीं दिखाई पड़ती । आध्यात्मिक, धार्मिक एवम् नैतिक मूल्यों से भटक जाने के कारण जीवन शून्य एवम् अशान्त-अप्रसन्न हो गया है । स्वार्थी लोग भ्रम एवम् अन्धकार में कुछ भटकते टटोलते दिखाई पड़ते हैं । उनके हृदय की शून्यता महती निराशा को जन्म दे रही है । मुक्ति की चाह तभी पूरी हो सकती है जब किसी आध्यात्मिक जागरण का महान् प्रकाश उनका स्पर्श करे तथा भौतिक वस्तुओं को तुच्छ प्रमाणित करने वाले आनन्द का प्रकाश जल उठे । गीता में कहा गया है कि जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब भगवान् मनुष्य के रूप में धरती पर अवतीर्ण होते हैं तथा धर्म की पुनः स्थापना करते हैं सत्यवादियों, धर्मानुयायियों की रक्षा और पापियों का नाश करते हैं ।

त्रेता युग में भगवान के महान् अवतार श्रीरामचन्द्र ने भारत को संस्कार भ्रष्ट होने से बचाया । द्वापर युग में महादयालु भगवान् फिर श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए । उन्होंने अपने निःसंग, उत्साह एवम् साहस के आदर्शपूर्ण जीवन के द्वारा परमार्थ आध्यात्मिक मूल्यों को एक नया जीवन दिया, जिन पर हमारी गौरवपूर्ण राष्ट्रीय जीवन पद्धति निर्भर थी । इसी देश रक्षा के क्रम में भगवान् फिर श्रीरामकृष्ण के रूप में धरती पर प्रकट हुए । इस बार भगवान को त्याग की मूर्त्ति, आध्यात्मिक पुनर्जागरण तथा विश्व प्रेम के रूप में पुकारा गया । आज वे संपूर्ण विश्व में पूजे जाते हैं । उनके अत्युच्च व्यक्तित्व ने जाति-पाँति, सामाजिक मर्यादाओं एवम् अन्तराष्ट्रीय सीमाओं की बाधाओं को तोड़ते हुए सभी वर्गों के लोगों के अन्दर निहित आध्यात्मिक शक्ति की ज्योति को जलाया और प्रखर किया ।

यह एक आश्चर्य जनक तथ्य है कि भगवान् श्रीराम और गौतम बुद्ध को अपवाद के रूप में छोड़कर अन्य सारे अवतार दरिद्रता की दारुण दशा में उत्पन्न हुए । किन्तु इन सबके बावजूद अवतार वाले घरों में कभी भी संतोष, प्रेम, शांति और प्रसन्नता की कमी नहीं थी ।

श्रीरामकृष्ण पश्चिम बंगाल के वर्दमान जिले के कुमारपुकुर गाँव के पवित्र ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे । उनके पिता खुदीराम चट्टोपाध्याय अपनी सुदृढ़ अचल भक्ति एवम् भगवान् के प्रति निर्भरता के कारण व्यावहारिक रूप से सबके आदरणीय थे । उनकी माता चन्द्रमणि देवी अपनी कृपापूर्ण प्रकृति के कारण अपने पड़ोसियों की अधिष्ठात्री आदरणीया थीं । भगवान् की प्रकाशमयी मूर्त्ति थीं । क्षुदीरामजी को स्नेह से देखते हुए पास आने का संकेत दिया ।

क्षुदीराम उनके पास गये और भक्ति से उनके चरणों पर गिर गये । भगवान् ने उन्हें इस प्रकार संबोधित किया-"क्षुदीराम ! तुम्हारी असाधरण भक्ति ने मुझे अत्यंत प्रसन्न किया है । मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ और मैं तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगा और तुम्हारे स्नेहिल वात्सल्य को प्राप्त करूँगा ।" इन शब्दों को सुनने पर उनकी खुशी का ठिकाना न रहा । किन्तु अगले ही क्षण आकुलचित्त हो

सोचने लगे कि मुझ जैसे गरीब के घर संसार के स्वामी का भारण-पोषण कैसे होगा ?

क्षुदीराम की चिन्ता को समझते हुए भगवान् ने उन्हें आश्वस्त किया - डरो मत ! क्षुदीराम ! तुम मुझे जो कुछ भी खाने को दोगे, मैं उसे ही अत्यन्त स्वादपूर्ण मान कर खाऊँगा । मेरी इच्छा पूर्ण होनी चाहिए ।

श्रीरामकृष्ण की माँ चन्द्रमणि देवी को भी अपने गाँव कमार पुकुर में वैसे ही दर्शन से आशीर्वाद प्राप्त हुआ तथा अद्भुत आध्यात्मिक अनुभव हुआ ।

बुधवार १८ फरवरी १८३६ ई० को बालक का जन्म हुआ, जो बाद में श्रीरामकृष्ण बने ।

यहाँ बिहार के गया में घटित एक महत्वपूर्ण घटना दृष्टिगोचर होती है । एक तरह से यह कहा जा सकता है कि श्रीरामकृष्ण का जन्ममूल यहीं है । श्रीरामकृष्ण के माता-पिता विविध प्रकार की आध्यात्मिक दृष्टियों एवम् प्रकाशों से आर्शीवाद प्राप्त थे ।

क्षुदीरामजी यदा-कदा हमेशा तीर्थ स्थानों की यात्रा के लिए उत्साहित होते थे । १८३५ ई० में कभी जाड़े में उन्होंने निर्णय किया अपने पितरों की आत्मा की संतुष्टि के लिए विष्णुपद गंगा में जाकर पारम्परिक धार्मिक अनुष्ठान (पिण्ड दान) किया जाए । गया जाते हुए मार्ग में वे वाराणसी पहुँच गये और वहाँ उन्होंने भगवान् विश्वनाथ को साष्टांग प्रणाम किया । अपना प्रणाम निवेदित किया । गया में अपने पितर - पुरुषों के सम्मान में धार्मिक अनुष्ठान (पिण्ड दान) करने पर शांति और संतोष का अनुभव किया । रात्रि में स्वप्न में उन्होंने देखा कि वे किसी पवित्र मंदिर में अपने पितरों की पूजा कर रहे हैं, उन्होंने यहाँ तक देखा कि उनके पितर दिव्य प्रकाश रूप में प्रसन्नतापूर्वक उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे । आँखों में अश्रु धारा तथा हृदय में स्वतः स्फूर्त भक्ति धारा बह गयी, उन्होंने उनके समक्ष नतमस्तक हो उनके चरण स्पर्श किये । कुछ ही क्षणों में उन्होंने पाया कि मंदिर में एक दैविक प्रकाश भरा हुआ है । उनके पुरखे मंदिर के दोनों ओर खड़े होकर दिव्य आसन पर प्रसन्नचित्त विराजमान भगवान् के प्रति अपनी हार्दिक भक्ति (पूजा अर्चना) प्रदर्शित कर रहे थे ।

श्रीरामकृष्ण का जीवन दैविक वृत्तियों एवम् कार्यों से भरा पड़ा है, क्योंकि उन्होंने भारत तथा विश्व के भिन्न-भिन्न धर्मों के गुप्त आध्यात्मिक खजानों का रहस्योद्घाटन किया है । अपने जीवन के प्रथम चरण में वे आध्यात्मिक अभ्यास में केन्द्रित हुए । दूसरे चरण में उन्होंने नरेन्द्रनाथ एवम् राखाल (स्वामी विवेकानन्द एवम् ब्रह्मानन्द) के नेतृत्व में अपने शिष्यों के द्वारा संसार को आध्यात्मिक बनाने के लिए मर्शीनरी की स्थापना की ।

इसके पहले एक दूसरा प्रकरण जिसने बिहार के साथ उनके संबंध को प्रगाढ़ किया । अपने प्रिय भक्त मथुरानाथ विश्वास की पहल पर उत्तर भारत के कुछ तीर्थ स्थानों वाराणसी, मथुरा और वृन्दावन की यात्रा पर गये और यात्रा के दौरान बिहार (अब झारखण्ड) के देवघर में उनका दल विश्राम पर रहा । उस क्षेत्र के रहने वाले लोगों की दयनीय दशा देखकर श्रीरामकृष्ण का दयालु हृदय द्रवीभूत हो गया । उन्होने धनी मथुरानाथ को आदेश दिया कि गरीब लोगों को अन्न-वस्त्र एवम् अन्य वस्तुओं का वितरण करते हुए दो दिन बिताओ । बिहार में यही वह स्थान है, जहाँ श्रीरामकृष्ण ने सर्वप्रथम सहायता कार्य का श्रीगणेश किया था । बाद में रामकृष्ण मिशन कई बार राज्य में राहत कार्य हेतु आया ।

१८८७ ई० में स्वामी विवेकानन्द ने भी परिक्रमा के क्रम में बिहार की विस्तृत यात्रा की । वे १८८८ ई० में सिमुलतला तथा वैद्यनाथ धाम में आए । फिर उन्होंने कुछ दिन वैद्यनाथ धाम में गुजारे । वहाँ मन्मथनाथ चौधरी का आतिथ्य स्वीकार कर ध्यान एवम् जप का अभ्यास किया । यह वही स्थान है जहाँ स्वामीजी ने अपने देश तथा देशवासियों की दशा के साथ स्वयं को जानने का निर्णय किया । उनका लक्ष्य था कि दासता में जकड़े देश की दयनीय दशा को दूर करने का मार्ग ढूँढ़ा जाए ।

रामकृष्ण मिशन ने बिहार में धर्म संस्कृति, शिक्षा एवम् स्वास्थ्य के क्षेत्र में अमूल्य सेवाएँ प्रदान की हैं । वर्त्तमान में इनके कई केन्द्र बिहार-झारखंड क्षेत्र में हैं,

जैसे-रामकृष्ण आश्रम पटना, मिशन आश्रम कटिहार, रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर रामकृष्ण मिशन सोसाइटी, जमशेदपुर, जामतारा आदि । दो आश्रम राँची में हैं । - रामकृष्ण मिशन, टी०बी० सानाटोरियम और रामकृष्ण मिशन दिव्यायन मोराबादी । इनके अतिरिक्त मिशन ने बिहार में बड़ी मात्रा में कई बार सहायता कार्यक्रम चलाये हैं जिनसे बिहार के पीड़ित लोगों का संकट दूर हो सका । इन सभी कल्याणकारी कार्यक्रमों में आश्रम ने श्रीरामकृष्ण परमहंस, माता शारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्द के जीवनों एवम् उपदेशों से प्रेरणा ग्रहण की है ।

- हिन्दुस्तान टाइम्स, पटना २७ फरवरी २००१ से साभार अनूदित । अनुवादक : विमलकान्त प्रसाद, छपरा

-: सच्ची शिक्षा :-

बुद्ध के एक शिष्य ने शिक्षा पूर्ण हो जाने पर धर्म प्रचार के लिए अन्य नगरों में जाने के लिए बुद्ध से इजाजत माँगी । बुद्ध ने यह जानने के लिए कि शिष्य ने शिक्षा कहाँ तक पाई, उससे कुछ प्रश्न किए । उन्होंने पूछाः जहाँ तुम प्रचार कर रहे होगे, वहाँ के लोग यदि तुम्हारी निन्दा करेंगे तो ? शिष्य बोलाः मैं उनकी सज्जनता की प्रशंसा करूँगा कि उन्होंने मुझे मारा नहीं ।

बुद्ध ने कहा और यदि वे तुम्हें मारने-पीटने लगें तो ? शिष्य ने उत्तर दिया, मुझे उनका दयाभाव देखकर खुशी होगी कि उन्होंने मुझे जान से नहीं मारा ।

बुद्ध ने फिर पूछा और यदि उन्होंने तुम्हें जान से ही मार डाला तो ? शिष्य ने जवाब दिया, भगवन यह संसार दुःख, शोक, संताप से भरा पड़ा है । यह शरीर रोगों का घर है । आत्महत्या पाप है इसलिए जीना पड़ता है । यदि लोगों ने मुझे जान से मार दिया तो मैं उन्हें धन्यवाद दूँगा जिन्होंने मुझे इस दुःखमय संसार से मुक्ति दिलाई । बुद्ध ने कहा -- तुमने सच्ची शिक्षा पाई है, तुम जहाँ भी जाओ, सफलता पाओ । मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है ।

- अमृता गोस्वामी

-: मैं क्या करूँ ? :-

आनन्द के हृदय को यह प्रश्न रात-दिन मथ रहा था कि मैं क्या करूँ? मेरा कर्तव्य क्या है ? मेरा गंतव्य कहाँ है?

व्याकुल और विह्वल होकर एक दिन आनन्द ने भगवान बुद्ध के समीप पहुँच कर श्रद्धा और नम्रता के साथ पूछा-भन्ते, मैं क्या करूँ, यह प्रश्न मुझे रात-दिन उद्वेलित कर रहा है ।

तथागत ने कहा, 'आनन्द! यह तो तुम जानते ही हो कि जब कोई अश्वारोही निर्जन और बियाबान जंगल में भटक जाता है तो रास्ता कौन बतलाता है ? उसे स्वयं ही तो अपना रास्ता खोजना पड़ता है ।'

'और आनन्द, नदियों के प्रवाह के मार्ग भी अलग-अलग होते हैं । जीव के लक्ष्य वैयक्तिक होते हैं । इसलिए एक का गन्तव्य दूसरा नहीं बता सकता है । अपना कर्तव्य तो तुमको स्वयं ही तय करना होगा ।'

आनन्द ने बात के मर्म को समझा और श्रद्धा से माथा झुका दिया । ❁

प्रतिवदेन

स्वामी रंगनाथानन्दजी की बांग्लादेश-यात्रा

रामकृष्ण मठ एवम् रामकृष्ण मिशन (बिलुड़ मठ) के परम अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्दजी ने नवम्बर २० से २८, २००० तक एक सप्ताह की ढाका, बांग्लादेश की यात्रा की ।

ढाका विमान पत्तन के विशिष्ट व्यक्तियों के विश्राम कक्ष (लाउन्ज) में, संक्षिप्त स्वागत-सत्कार के उपरान्त स्वामी रंगनाथानन्दजी रामकृष्ण मिशन, ढाका गये, जहाँ सहस्राधिक भक्तगण उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे । "संध्या-आरती" के उपरान्त भक्तगणों के आशीर्वाद देते हुए स्वामीजी ने संक्षिप्त प्रवचन दिया ।

२१ नवम्बर को स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा का दर्शन करने स्वामी रंगनाथानन्दजी ढाका विश्वविद्यालय के जगन्नाथ हॉल (सभा-भवन) गये । उन्होंने वहाँ एकत्र छात्रों एवम् शिक्षकों को संक्षेप में सम्बोधित किया तथा स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिये गये उपदेश के अनुसार मानवजाति के निमित्त स्वयं को समर्पित करने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित किया ।

तदुपरान्त स्वामीजी प्रसिद्ध ढाकेश्वरी मन्दिर का अवलोकन करने गये जहाँ वे वरिष्ठ नागरिकों एवम् भक्तों से मिले तथा उन्हें हल्का सम्बोधन किया ।

इसके बाद उन्होंने देवभोग स्थित साधु नाग महाशय के घर को प्रस्थान किया । उन्होंने नारायणगंज स्थित रामकृष्ण मिशन आश्रम का भी निरीक्षण किया। २२, २४, २६ तथा २७ नवम्बर को उन्होंने ४६४ भक्तों को कृपापूर्वक दीक्षा प्रदान की ।

२५ नवम्बर के अपराह्न में जीवन के हर क्षेत्र के तथा विभिन्न देशों के लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्तियों यथा, राजदूतों, प्रोफेसरों, व्यापारियों, कलाकारों, रोटेरियनों, कुलपतियों आदि का समूह एकत्र था ।

उनमें प्रमुख थे, न्यायमूर्ति डी.सी. भट्टाचार्य, न्यायमूर्ति बी.बी. राय चौधरी, जेनरल सी.आर. दत्त, ब्रिगेडियर अतीकुर रहमान, जनाब कलीम सराफी (कलाकार), फादर एडम्स, राजदूत, वैटिकन दूतावास, जनाब अब्दुल मतीन, अध्यक्ष, सम्पादक मंडल, दैनिक इत्तेफाक, श्री मणिलाल त्रिपाठी, बांग्लादेश में भारत के उच्चायुक्त, श्री पी. शफीउर रहमान, निर्वाचन आयुक्त, बांग्ला देश, प्रो. कबीर चौधरी, बांग्लादेश के राष्ट्रीय प्रोफेसर (आचार्य), प्रो. सलाउद्दीन अहमद, ढाका विश्वविद्यालय, प्रो. अमीनुल इस्लाम, ढाका विश्वविद्यालय, प्रो. काजी नूरुल इस्लाम, ढाका विश्विद्यालय, प्रो. नीमचन्द भौमिक, ढाका विश्वविद्यालय, प्रो. दुर्गादास भट्टाचार्य, कुलपति, राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, प्रो. ए.के. आजाद चोधरी, कुलपति, ढाका विश्वविद्यालय, अधिवक्ता सजावर होसैन, अध्यक्ष, रोटरी क्लब, ग्रेटर ढाका, अन्य रोटेरियनों के साथ रिजनल गर्वनर, डा. मिर्जाअली हैदर, सचिव, रोटरी क्लब, ग्रेटर ढाका, श्री कमाउद्दीन, सह-सचिव, उद्योग मंत्रालय, प्रो. सौकत आरा हुसैन, ढाका विश्वविद्यालय, डॉ. मारुफी खान, अकिंचन महिलाओं के पुनर्वास कार्यक्रम के परियोजना निदेशक, बांग्लादेश सरकार, अधिवक्ता अफरोजा आलम, जनाब सद्दीकी हुसैन, सांसद (विपक्ष) श्रीमती चित्रा भट्टाचार्य, सांसद, श्रीमती नसीबुन रहमान, श्री अजय राय, पत्रकार, श्री मुकुल बोस (नेता, अवामी लीग) श्री सलाम आजाद (स्टार टी.बी. बांग्ला), श्री देवनाथ धाव, परामर्शदाता, भारत के उच्चायुक्त ।

विदेश मंत्री, जनाब अब्दुस्समद आजाद ने स्वामी रंगनाथानन्दजी का स्वागत करते हुए, बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम के दौरान तथा मुक्ति के उपरान्त रामकृष्ण मिशन द्वारा बांग्लादेश में की गयी सेवाओं का उल्लेख किया।

स्वामी रंगनाथानन्दजी ने यह आशा प्रकट की कि बांग्लादेश काफी प्रगति करेगा । उन्होंने विभिन्न धर्मावलम्बियों

भवन्स जर्नल के फरवरी १५, २००१ अंक में प्रकाशित प्रतिवेदन का साभार हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादक : डॉ. केदारनाथ लाभ

के बीच ऐक्य के भाव की आवश्यकता पर जोर दिया। १९४२ एवम् पुनः १९४९ की अपनी यात्रा के बाद हुई बांग्लादेश की प्रगति देखकर वे परम प्रसन्न थे। उन अवसरों पर उनकी यात्रा अल्पकालीन थी। (यह सभा केवल ३०० व्यक्तियों तक ही सीमित रखी गयी थी परन्तु प्रायः ५०० व्यक्ति सभा में सम्मिलित थे ।)

२६ नवम्बर को, देश के विभिन्न भागों से आये रामकृष्ण मिशन के भक्तों एवम् शुभचिन्तकों को सम्बोधित किया तथा उन्हें ईश्वर के प्रति निष्ठावान होने को कहा । उन्होंने उनसे कहा कि चूँकि ईश्वर सभी धर्मों के समस्त मानव प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं इसलिए तदनुसार सभी लोगों को समान भाव से वे प्रेम करें।

प्रो. अबू सैयद ने कहा कि स्वामी रंगनाथानन्द जो आधुनिक काल की एक महान् आत्मा हैं, केवल एक विशेष देश की विभूति नहीं हैं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व की सम्पत्ति हैं ।

२८ नवम्बर, विदा-दिवस को सैकड़ों भक्त अपने प्रणाम निवेदित करने के लिए आश्रम के परिसर में पंक्तिबद्ध खड़े रहे ।

स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के कार्यक्रम बांग्लादेश के सामाचार माध्यमों तथा आकाशवाणी-दूरदर्शन से प्रचारित-प्रसारित किये गये।

(रामकृष्ण मिशन आश्रम, ढाका के स्वामी अक्षरानन्द के प्रतिवेदन पर आधारित)

-: बुद्ध :-

बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं । ऐसे अन्य कई महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे, वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे । पर बुद्ध के अधरों पर अन्तिम क्षण तक ये ही शब्द थे, 'अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी । अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता । स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो ।' .....वे कर्मयोग के ज्वलन्त आदर्श स्वरूप थे अरे जिस उच्चावस्था पर वे पहुँच गये थे, उससे प्रतीत होता है कि कर्म-शक्ति द्वारा हम भी उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं ।

– स्वामी विवेकानन्द

-: केवल शान्ति :-

एक बार बुद्ध शिंशपा-वृक्ष के नीचे बैठे थे, उसके पत्ते अपने हाथ में लेकर अपने शिष्यों से कहा कि, 'शिंशपा के सारे-के-सारे पत्ते वहीं हैं या पेड़ पर कुछ और भी है?'

शिष्यों ने एक स्वर में कहा, 'शिंशपा-वृक्ष पर पत्ते और भी है ।'

तब बुद्ध ने कहा, - 'इतनी ही असंदिग्ध यह बात भी है कि जो मैंने ज्ञान दिया है, उससे भी अधिक मुझे और ज्ञात है । जो मैंने तुम्हें नहीं बताया है ।

'क्योंकि उससे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा, यह 'अर्हत्व' की प्रगति में सहायक नहीं होग, उससे क्योंकि निर्वाण लाभ में सहायकता नहीं मिलेगी, पार्थिव बातों से विमुख होने में सहायता नहीं मिलेगी, इच्छाओं को बश में करने में, अनित्य के उपशमन में, शान्ति की प्राप्ति में सहायता नहीं मिलेगी । क्योंकि दर्शन किसी को निर्मल नहीं करता, शान्ति ही निर्मल करती है ।'

– प्रस्तुति : ओमप्रकश हाथपसारिया

विजयादशमी २६ अक्टूबर

महाशक्ति की उपासना

-डॉ० रंजन सूरिदेव, पटना ।

भारतीय साधना की परम्परा में देवीस्वरूपा शक्ति की उपासना को अतिशय मूल्य दिया गया है । शक्ति रूप में यह देवी समग्र सृष्टि में व्याप्त हैं : "या देवी सर्वभूतेपु शक्तिरूपेण संस्थिता ।" बिना शक्ति के सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती । शाक्तागम में उपासना के लिए शक्ति के अनेक नामरूपों और उनके विविध महात्म्यों का उल्लेख किया गया है । इसलिए कि लोकसमुदाय अपनी-अपनी अवधारणा के अनुरूप शक्ति की आराधना कर सके । उपासना का प्रमुख लक्ष्य है । इसीलिए, शक्ति को 'विश्वेश्वरी' और 'जगद्धात्री' के साथ ही 'महाशक्ति' भी कहा गया है ।

"विश्वेश्वरी जगद्धात्रीं स्थिति संहारकारिणीम् ।
मयूरकुकुटवृते महाशिक्तिधरेऽनघे ।।
(दु.सप्त. १.७०.११.१५)

आसुरी भावना के विनाश के उद्देश्य से विभिन्न देवों के शरीर से जो विपुल विराट तेज निकला, वह एकत्र होकर नारी के रूप में परिणत हो गया और वही नारी संसार को दानवी बाधा से मुक्त करने के लिए कल्याणमयी देवी के रूप में आविर्भूत हुई और महाशक्ति या आत्मशक्ति वनकर समस्त विश्व में प्रतिष्ठित हो गई । अतः संसार की सभी विद्याएँ और सभी स्त्रियाँ उसी महाशक्ति के प्रतिरूप है :

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः ।
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।।

यही देवी सभी जीवों में विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षांति, जाति (राष्ट्रीय पहचान), लज्जा, शांति, श्रद्धा, कांति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, माता और भ्रांति के रूप में संस्थित है । इसी व्यापकता के कारण इस देवी को व्याप्ति कहा गया है । व्याप्तिदेव्यै नमो नमः । (दु.सप्त. ५.७७)

शाक्ततन्त्र में अनेक नाम रूपात्मक महाशक्ति के तीन रूपों को अधिक प्रमुखता प्राप्त है : महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती । इन तीनों में भी महालक्ष्मी ही सर्वप्रमुख हैं, क्योंकि इनसे ही महाकाली और महासरस्वती रूपायित हुई हैं । महालक्ष्मी ही देवी वैष्णवी हैं । यही अनन्तवीर्या, अनंतशक्ति, विश्व की बीजभूता और परमामाया हैं । सारा विश्व इनसे सम्मोहित है । यही प्रसन्न होने पर मुक्ति प्रदान करती हैं :

त्वं वैष्णवी शक्तिनन्तवीर्या, विश्वस्य बीज परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत, त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः ।।
(दु.सप्त. ११.५)

"दुर्गासप्तशती" के "प्राधानिक रहस्य" में महाकाली की अवतारणा के विषय में कहा गया है कि परमेश्वरी महालक्ष्मी ने इस जगत को शून्य देखकर केवल तमोगुण रूप उपाधि द्वारा एक अन्य उत्कृष्ट रूप धारण किया । वह रूप एक श्रेष्ठ नारी की आकृति में प्रकट हुआ, जिसके शरीर की कांति निखरे हुए काजल की भाँति काले रंग की थी । उसके नेत्र बड़े-बड़े और कटिभाग पतला था । उसके चार भुजाएँ थीं, जो मस्तक (मुंड) से सुशोभित थीं । वह वक्षःस्थल पर कबन्ध (धड़ या रूण्ड) का हार और मस्तक पर मुंडों की माला धारण किये हुए थी । इस प्रकार असाधारण अलौकिक नारी-स्वरूपा उस तामसी देवी ने महालक्ष्मी से कहा "माताजी, आपको बार-बार प्रणाम है । मुझे मेरा नाम और कर्म बताइए ।"

महालक्ष्मी ने उस तामसी देवी से कहा "अरी तामसी । महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, (प्यास), निंद्रा, तृष्णा (अमिट भोगेच्छा), एकवीरा, कालरात्रि और दुरत्यया" ये सब तुम्हारे नाम हैं । ये सभी नाम तुम्हारे कर्मों द्वारा लोक में चरितार्थ होंगे । इन नामों द्वारा तुम्हारे कर्मों को जानकर जो इनका पाठ करेगा, वह समस्त प्रकार के सुखभोग की उपलब्धि में समर्थ होगा ।

महाशक्तिमयी महाकाली ही शिव का प्रतिरूप बनी । इसलिए शिव और शक्ति को अभिन्न माना गया है । शाक्तागम में उल्लेख है :

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः ।
अन्तरं नैव पश्यामि चंद्रचंद्रिकयोरिव ।।

अर्थात् शिव के भीतर शक्ति और शक्ति के भीतर शिव प्रतिष्ठित हैं । जिस प्रकार चाँद और चाँदनी में कोई भेद नही होता, उसी प्रकार शिव और शक्ति में कोई भेद नही हैं ।

मूलप्रकृति महालक्ष्मी से उत्पन्न महाकाली संसार में प्रतिक्षण होने वाली सृष्टि की अधिस्वामिनी हैं और यही सृष्टि के पालन और संहार की भी एकाधिकारिणी हैं । संहारकर्त्री होने के कारण ही उनके काली नाम की सार्थकता है । "कालयति भक्षयति प्रलयकाले सर्वम् इति काली ।" जो प्रलयकाल में संपूर्ण सृष्टि को अपना ग्रास बना लेती हैं, "वही काली हैं । वही जब कल्याणकर्त्री हो जाती हैं, तब "भद्रकाली" कहलाती हैं । "भद्रमंसुखं विकलयति स्वीकरोति भक्तेभ्यो दातुम् इति भद्रकाली ।" जो अपने भक्तों को देने के लिए भद्र या सुख या मंगल स्वीकारती हैं वह "भद्रकाली" हैं । भगवान रूद्र महाकाली के संकेत पर ही संसार का कार्य करते हैं । यहाँ तक कि महाशक्ति स्वरूपा महाकाली के विना शिव शववत् हो जाते हैं । इकारात्मक शक्ति के संयोग से ही "शव" की शिव के रूप में प्रतिष्ठा होती है ।

"दुर्गासप्तशती" के प्रथम चरित्र के ध्यान में महाकाली को दस भुजाओं और दस पैरोंवाली कहा गया है । नीले पत्थर के समान कांतिवाली यह तमोगुणमयी महाकाली भगवान विष्णु की योगनिद्रा के रूप में प्रतिष्ठित हैं । मधु और कैटभ नामक राक्षसों के विनाश के लिए ब्रह्मा ने जिनकी स्तुति की थी, उनका ही नाम महाकाली है । उनकी यथोक्त दस भुजाओं और दस पैरों के अतिरिक्त उनके दस मुख हैं । वह काजल के समान काली और बीस नेत्रों की विशाल पंक्ति से सुशोभित हैं । उनकी दंतपंक्ति और द्रंष्टाएँ "दाढ़" चमकती रहती हैं । यद्यपि उनका रूप भयंकर है, तथापि वह रूप, सौभाग्य, कांति एवम् महती संपदा प्रदान करने वाला हैं । वह अपने दसों हाथों में खड्ग, वाण, धनुप, गदा, शूल, चक्र, शंख, भुशुण्डि (एक क्षेप्यास्त्र), परिध (मूसल) तथा कटा हुआ मस्तक (मुण्ड), जिससे रक्त चूता रहता है, धारण करती है,

खड्ग चक्रगदेसुचापपरिधान् , शूलं भुशुण्डिं शिर :
शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयां, सर्वांग भूपावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्य पाददशकां, सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो, हन्तुं मधुं कैटभम् ।।

यह महाकाली भगवान विष्णु की दुस्तर माया है । आराधना करने पर यह समस्त चराचर जगत को अपने आराधक के अधीन कर देती हैं । महाकाली ही शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, शुभद्रा, भगवती आदि अनेक नामों से जानी जाती हैं । महाकाली से ही शंकर और सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ है ।

दशमुखी काली के पूजन से सभी प्रकार के अरिष्ट (विघ्न-बाधा) शांत हो जाते हैं । काल की अधिस्वामिनी या अधिष्ठात्री होने के कारण यह मृत्यु को भी रोक सकती हैं । इनका उपासक अपमृत्यु के अधीन कभी नहीं होता और मरने पर मोक्ष का भागी होता है ।

श्रुति-परंपरा के अनुसार महाकाली की जीभ निकली हुई मुद्रा के बारे में कहा जाता है कि असुर संहार में निरत महाकाली का क्रोध इतना अधिक बढ़ गया कि असुर संहार के बाद वह विश्व-संहार के लिए उद्यत हो गई । ऐसी स्थिति में देवता काली को मनाने के लिए शिवजी की प्रार्थना करने लगे । शिवजी देवों के अनुरोध पर क्रोधोन्मत्त काली के आगे भूमि पर चित लेट गये । काली का उठा हुआ पग शिवजी की छाती पर पड़ा । पति पर पैर पड़ने का ख्याल आते ही लज्जा और संकोचवश काली की जीभ सहज ही बाहर निकल आई और वह शांत हो गई ।

किन्तु, श्मशानकाली के वर्णन में उन्हें शव पर आरूढ़ बताया गया है । शाक्त परम्परा में श्मशान काली का भी विधिवत पूजन किया जाता है । उनका आगमोक्त ध्यान इस प्रकार है :

शवारूढां महाभीमां घोरदष्ट्रां वरप्रदाम् ।
हास्ययुक्तां त्रिनेत्रां च कपालकर्तिकाकराम् ।।
मुक्तकेशीं ललज्जिहा पिबन्तीं रुधिरं मुहुः ।
चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां भजेत ।।

अर्थात, जो देवी शव पर आरूढ़, अतिशय विशाल और भयंकर दाढ़ों तथा तीन आँखों वाली हैं, जो हाथ में कत्ता (खड्ग) और कपाल लिये हुए हैं, जिनके केश खुले-बिखरे हुए हैं, जिनकी जीभ लपलपा रही है और जो बार-बार रक्तपान कर रही हैं, मनोरथ सिद्धि और अभय का वरदान देने वाली उन चतुर्भुजाकाली का मैं ध्यान करता हूँ । ❋

श्री रामकृष्ण वचनामृत का चमत्कार

आधुनिक अमरीकी प्रवृति

- स्वामी सर्वगतानन्द*

एम.आई.टी (मैसेसेच्यूट्स प्रोद्योगिकी संस्थान) का एक छात्र मेरे पास अक्सर परामर्श के लिए आया करता था । वह एक मेधावी छात्र था तथा एम.आई.टी से स्नातक होने के उपरान्त उसे वहीं नौकरी मिल गयी । अन्ततः, वह एक प्रोफेसर हो गया तथा एक सुन्दर भली लड़की से उसने विवाह भी कर लिया । उस समय मैंने उसे "श्रीरामकृष्ण वचनामृत" की एक प्रति उपहार स्वरूप प्रदान की । दोनों प्राणी श्रीरामकृष्ण के उपदेशों में रूचि रखते थे, परन्तु जब कभी वे "कामिनी और कंचन" शब्दों के सम्पर्क में आते थे, तब एक बेचैनी या कष्ट का अनुभव करते थे ।

जब उस प्रोफेसर ने इस सम्बन्ध में मुझे बताया, तब मैंने उससे कहा कि केवल उन्हीं अंशों को पढ़े जो उसे भाते हों तथा शेष अंशों पर ध्यान नहीं दे ।

बहुत दिनों के बाद एम.आई.टी. के अध्यक्ष के साथ एम.आई.टी के निकाय एवं कुलाचार्यों को मध्याह्न-भोजन के लिए आमंत्रित किया गया था । मेरा उपर्युक्त प्रोफेसर-मित्र आया और मेरी बगल में बैठ गया तथा मुझसे पूछा कि 'वचनामृत' की कितनी प्रतियाँ मेरे पास हैं । तब मैंने उससे कहा, "इस प्रकार तुम उन समस्त प्रतियों को जला डालना चाहते हो ?" उसने यह कहते हुए 'नहीं' कहा कि वह उन्हें लेकर अपने मित्रों में वितरित करना चाहता है । उसने मुझे उस सभा के विषय में बताया जो कुछ दिनों पहले मैसेसेच्यूट्स के कैम्ब्रिज में हुई थी । उस सभा में अनेक मनोवैज्ञानिक, धार्मिक-नेता, वैज्ञानिक एवं अन्य लोग एकत्रित हुए थे । सभा का मूल प्रतिपाद्य विषय था - "आधुनिक अमरीकी प्रवृत्ति ।" उनलोगों ने अपने बिन्दुओं पर बातें कीं यथा अधिकार, सत्ता, मुनाफा, सुख-भोग, राजनीति आदि-आदि । आखिर में, एक समाज-विज्ञानी उठ खड़ा हुआ और उसने कहा, "अमेरिका में हमलोगों में से अधिकांश लोग, "डॉलर रूपी राजा तथा काम-वासना रूपी रानी की उपासना करते हैं ।" तब, उस प्रोफेसर ने कहा, "श्रीरामकृष्ण ने इसी प्रकार 'वचनामृत' में जो कहा था उसका मुझे तुरन्त स्मरण हो आया ।" उसने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "भारत की अपेक्षा आज अमेरिका में हमलोगों को श्रीरामकृष्ण के उपदेशों की अधिक जरूरत है । इसी कारण 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' की कुछ प्रतियाँ अपने मित्रों को देने में मेरी दिलचस्पी है ।" स्वभावतः, मैंने उसे वचनामृत की कुछ प्रतियाँ दीं और वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ ।

*स्वामी सर्वगतानन्द १९५५ से १९९५ चालीस वर्षों तक एम.आई.ओ अमेरिका में एक कुलाचार्य थे ।

वचनामृतकार के प्रति सम्मति

"पत्रकों (वचनामृत के पृष्ठों) के पढ़ने से मुझे कितना हर्ष हुआ है मैं उसका यथार्थ शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता । जब मैं उसे पढ़ता हूँ तो सचमुच हर्ष से उन्मत्त हो जाता हूँ । यह बात विचित्र है न ? हमारे गुरु और प्रभु इतने मौलिक थे कि हममें से प्रत्येक को मौलिक बनना पड़ेगा या 'कुछ नहीं ।' .....सक्रेटिस के वार्तालाप में प्लेटो ही प्लेटो की छाप है, परन्तु आप स्वयं तो इसमें अदृश्य ही हैं । साथ ही उसका नाटकीय पहलू परम सुन्दर है । यहाँ और पश्चिम में दोनों जगह लोग इसे बहुत पसंद करते हैं ।"

-स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्दजी के मायावती पदार्पण का शताब्दी समारोह

(जनवरी 1901 - जनवरी 2001)

सौ वर्ष पूर्व स्वामी विवकानन्दजी के मायावती आगमन तथा अन्य स्थानों में उनके पावन पदार्पण एवं मायावती से वापस होकर अनेक स्थानों में प्रवास करते हुए लौटने के वृत्तान्त के अनुसार उन सब स्थानों के श्रद्धालु लोगों, विद्यालयों के साथ-साथ, रामकृष्ण मिशन कोलकाता तथा स्टूडेन्ट्स होम बेलघरिया कोलकाता के कुशल सहयोग और सहभागिता से २७ दिसम्बर २००० से २१ जनवरी २००१ तक निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किये गये -

१. सौ वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानन्दजी जिस मार्ग से आये थे उसी का अनुसरण करते हुए मायावती तक की यात्रा रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा युवा भक्तों के २२ सदस्यीय यात्री दल ने स्वामी सत्यबोधानन्दजी के नेतृत्व में २७ दिसम्बर २००० को हावड़ा से रेलयात्रा प्रारम्भ की, २९ दिसम्बर २००० को काठगोदाम पहुँच कर वहीं रात्रि विश्राम किया। सौ वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानन्दजी ने जिस प्रकार काठगोदाम से यात्रा प्रारम्भ की थी, ठीक उसी प्रकार से यात्रियों ने पैदल यात्रा प्रारम्भ की। इस यात्री दल ने दिन में पैदल चलकर उन्हीं स्थानों पर रात्रि विश्राम किया जहाँ स्वामी विवेकानन्दजी ने किया था, अर्थात् ३० दिसम्बर २००० को धारी में, ३१ दिसम्बर २००० को पहाड़पानी में, १ जनवरी २००१ को मोरनौला में तथा २ जनवरी २००१ को धूनाघाट में इस दल ने भी रात्रि विश्राम किया। ३ जनवरी २०११ को मध्याह्न में जब यह यात्री दल मायावती पहुँचा तो मायावती अल्मोड़ा एवम् श्यामलाताल के संन्यासियों ब्रह्मचारियों तथा अनेक स्थानीय लोगों ने बड़े उत्साह और हर्षातिरेक के साथ दल का हार्दिक अभिनन्दन किया। काठगोदाम से मायावती तक की इस पैदल यात्रा में यात्रीदल ने कुछ कष्टप्रद स्थितियों का भी सामना किया। यथा यात्रावधि में इस पर्वतीय मार्ग में कड़ाके की ठंड थी और कुछ स्थानों पर बर्फ गिर रही थी। दल के रात्रि विश्राम स्थलों पर स्थानीय लोगों ने अपार स्नेह, सौजन्य और सत्कार प्रकट किया और स्वल्पाहार प्रदान किया। यात्री दल के सदस्यों ने स्थानीय जन समूह के समक्ष सौ वर्ष पूर्व के स्वामी विवेकानन्दजी के यात्रावृत्त की जानकारी दी तथा सहज औपचारिक वार्ता के साथ अनेक चित्रों, पत्रकों और लघुपुस्तिकाओं के माध्यम से उन ग्रामों में स्वामीजी के विश्राम का विवरण प्रस्तुत किया। साथ ही साथ स्वामी जी, श्री रामकृष्ण देव तथा श्री माँ शारदा देवी का सन्देश उन्हें सुनाया।

एक पक्ष (१५ दिन) का प्रवास पूर्ण करने के उपरान्त जिस तरह स्वामी विवेकानन्दजी ने १८ जनवरी १९०१ को मायावती से प्रस्थान किया था ठीक उसी प्रकार इस दल के कुछ सदस्यों ने भी १८ जनवरी २००१ को मध्याह्न में मायावती से प्रस्थान किया तथा स्वामीजी की वापसी के मार्ग का अनुगमन करते हुए टनकपुर तक के पैदल मार्ग में इस दल ने १८ जनवरी २००१ को चम्पावत में १९ जनवरी २००१ को दूयूरी होते हुए चल्थी में रात्रि विश्राम किया तथा २० जनवरी २००१ को टनकपुर पहुँचे।

२. इसी कार्यक्रम के दूसरे चरण में ४ जनवरी २००१ को मायावती में स्वामी माधवानन्दजी के दिशा निर्देशन में आध्यात्मिक शिविर का आयोजन हुआ तथा १३ जनवरी २००१ को युवाओं के लिए स्वामी मुमुक्षानन्दजी के मार्गदर्शन में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया गया।

३. स्वामी विवेकानन्दजी के मायावती आगमन के शताब्दी समारोह को मनाने के लिये वापसी यात्रा के क्रम में चम्पावत, टनकपुर, खटीया और पीलीभीत में क्रमशः जनवरी १८, जनवरी १९, जनवरी २०, जनवरी २१, २००१ को जनसभाएँ आयोजित की गयीं। टनकपुर और खटीया में तीन स्थानीय विद्यालयों में सभाएँ सम्पन्न की गई। जिन संन्यासी स्वामी जनों ने उक्त सभाओं में प्रवचन दिये, उनमें स्वामी मुमुक्षानन्द, स्वामी सोमदेवानन्द, स्वामी चन्द्रशेखरानन्द, स्वामी सत्यबोधानन्द तथा स्वामी गौरीकान्तानन्द शामिल थे।

४. कार्यक्रम के अन्तिम चरण में मायावती के सेवित ग्राम फोर्ती, अण्डोली तथा बलाई गाँवों के सभी गरीब परिवारों को अद्वैत आश्रम मायावती द्वारा कम्बल वितरित किये गये।◆

श्रद्धांजलि

विवेक शिखा की प्रकाशिका श्रीमती गंगा देवी का तिरोधान

'विवेक शिखा' की जन्मदात्री एवं प्रकाशिका श्रीमती गंगा देवी का गत ११ फरवरी २००१ रविवार फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी, गणेश चौठ को पटना स्थित इन्दिरा गाँधी आयुर्विज्ञान संस्थान में पूर्वाह्न ११.१५ बजे तिरोधान हो गया । वे ६७ वर्ष की थीं ।

श्रीमती गंगा देवी परम धर्म परायणा, सरल, निश्छल प्रकृति की, सात्विक प्रवृत्तिवाली एक करूणापूर्ण ममतामयी एवं स्पष्ट भाषिणी महिला थीं । वे श्रीश्री माँ सारदा देवी की अनन्य उपासिका थीं और कहा करती थीं कि श्री माँ सारदा देवी ने उन्हें स्वप्न में स्वयं आकर मंत्र-दीक्षा दी है । वे श्री माँ सारदा देवी को जगदम्बा उमा-पार्वती स्वरूपिणी मानती थीं ।

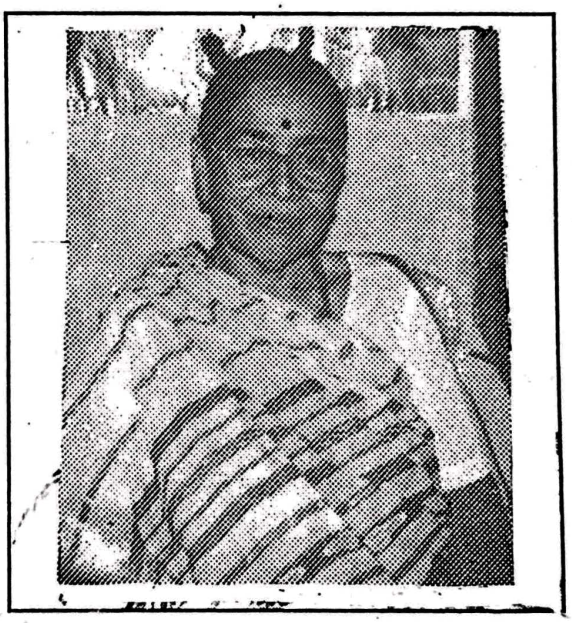

श्रीमती गंगा देवी रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के वर्तमान परमाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगानाथानन्दजी महाराज को अपना आध्यात्मिक पिता मानती थीं तथा पूज्य महाराज भी उन्हें पुत्रीवत् स्नेह से सदैव अभिषिक्त करते रहे थे । गंगा देवी की श्रद्धा-भक्ति एवं सेवा-त्याग भाव से प्रसन्न हो एक बार पूज्य महाराज ने उन्हें अपने हाथों से एक शाल प्रदान की थी ।

श्रीमती गंगा देवी प्रकृति से सदाचारिणी एवं तपोनिष्ठ थीं । साधु-संग उनका स्वभाव था एवं साधु-सेवा उनका स्वधर्म । रामकृष्ण मठ एवं मिशन के साधुओं के आगमन पर वे बड़े मनोयोग, स्वतः स्फूर्ति, आत्मश्रद्धा एवं प्रीति पूर्वक नाना प्रकार के व्यंजन बनाती थीं । ऐसी स्थिति में वे अपने स्वास्थ्य एवं रूग्णता की भी चिन्ता नहीं किया करती थीं । साधु-आगमन उनके लिए किसी पर्व-त्योहार के आगमन-सा होकर उन्हें उल्लसित कर देता था । श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज, स्वामी गहनानन्दजी महाराज, स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज, स्वामी श्रीधरानन्दजी महाराज, स्वामी सुहितानन्दजी महाराज, स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज, स्वामी आत्मानन्दजी महाराज, स्वामी गौतमानन्दजी महाराज, स्वामी शुद्धव्रतानन्दजी महाराज, स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज, स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज, स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज, स्वामी चन्द्रानन्दजी महाराज, स्वामी शशंकानन्दजी महाराज जैसे साधुओं की एकाधिक बार सेवा करने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ था । स्वभावतः इन साधुओं का सहज स्नेह भी इन्हें प्राप्त हुआ था जो इनके जीवन का पाथेय एवं सम्बल था । रामकृष्ण मठ या मिशन में योगदान करने के उत्सुक युवकों की वे मातृवत सेवा करती थीं ।

श्रीमती गंगा देवी की तीर्थटन में गहरी रूचि थी । उन्होंने जनकपुर धाम (नेपाल), वैद्यनाथ धाम, काशी, प्रयाग, अयोध्या, केदारनाथ, बद्रीनारायण, द्वारका, सोमनाथ, रामेश्वरम् , कन्याकुमारी, दक्षिणेश्वर, बेलुड़मठ, कामारपुकुर, जयरामबाटी, अमरकंटक, उज्जैन (महाकालेश्वर), ओंकारेश्वर आदि तीर्थों की एकाधिकबार श्रद्धापूर्ण यात्रा की थी ।

श्रीमती गंगाद देवी धर्म एवं अध्यात्म विषयक ग्रंथों के स्वाध्याय में अपने समय का अधिक सदुपयोग करती थीं । वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, रामचरित मानस, श्रीमद् भागवत, भगवद् गीता, श्रीरामकृष्ण वचनामृत, श्री सारदा देवी, युगनायक विवेकानन्द, परमार्थ प्रसंग, धर्म, ध्यान और साधना, धर्म जीवन और साधना, श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग आदि उनके प्रिय ग्रंथ थे । इनमें से अधिकांश ग्रंथो का वे अनवरत अध्ययन करती थीं । श्रीमाँ सारदा के जीवन-चरित से प्रेरणा लेकर उन्होंने अपने जीवन को रूपान्तरित किया था । वे जननी तो नहीं थीं, परन्तु एक ममतामयी माँ अवश्य हो गयी थीं ।

श्रीमती गंगा देवी ने विगत बीस वर्षों से परम निष्ठा निःस्वार्थ एवं समर्पण भाव से रामकृष्ण विवेकानन्द

भावधारा की तत्कालीन एकमात्र हिन्दी मासिकी विवेक शिखा का प्रकाशन करती रहीं और आसेतु-हिमाचल रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के प्रचार-प्रसार में अपनी सीमा में महत्तम योगदान करती रहीं । वे एक कुशल गृहिणी थीं । सबको अपने स्नेह में बाँधती थीं, परन्तु घर में रहकर भी वे अन्तर से अनासक्त विरागिनी थीं ।

छपरा स्थित श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम के निर्माण में श्रीमती गंगा देवी ने असीम धीरज, लगन और रूचि पूर्वक अपना सक्रिय एवं कुशल सहयोग देकर आश्रम के सचिव को इस महत कार्य में प्रेरणा एवं बल प्रदान किया ।

श्रीमती गंगा देवी विगत कुछ महीनों से शारीरिक रूप से रुग्ण रहने लगी थीं । कई प्रकार के छोटे-मोटे रोगों से वे क्लान्त हो गयी थीं । इधर अचानक उन्हें हेपाटाइटिस-बी ने आक्रान्त कर दिया । इन्दिरा गाँधी आयुर्विज्ञान संस्थान, पटना में ४ फरवरी २००१ को उन्हें भर्ती कराया गया । पर वे संभल नहीं सकीं ।

८ फरवरी, गुरुवार, माघ की पूर्णिमा । चन्द्रोदय हो गया था । प्रयाग में लाखों लोग इस सहस्राब्दी के प्रथम महाकुंभ के पुण्य अवसर पर संगम में स्नान कर रहे थे । पिछले कुंभ में वे स्वयं प्रयाग गयी थीं । गंगा और संगम से उन्हें आन्तरिक अनुराग था । गुरुवार को ही श्रीमाँ सारदा का अवतरण हुआ था । श्रीमाँ सारदा का एक छोटा चित्र अपने सीने में लगाये हुए वे अकस्मात संध्या छः बजे चादर ओढ़कर सो गयीं । और वे कोमा में चली गयीं । पटना रामकृष्ण मिशन आश्रम के सचिव स्वामी चन्द्रानन्दजी महाराज एक दिन पूर्व ही उन्हें देखने स्वामी एकदेवानन्दजी के साथ आये थे और उन्हें माँ सारदा से प्रार्थना करने को कहा था । वे पुनः ९ फरवरी को उन्हें कोमा में ही देखने स्वामी मुनीश्वरानन्दजी के साथ आये । और रविवार ११ फरवरी को ११.१५ बजे पूर्वाह्न ६७ वर्ष की आयु में वे चिरनिद्रा में लीन हो गयीं । उनके प्राणान्त के समय अचानक अस्पताल की बिजली कुछ क्षणों के लिए गुल हो गयी ।

श्रीमती गंगा देवी का पार्थिक शरीर पटना रामकृष्ण मिशन आश्रम में उसी दिन लाया गया । मंदिर का पट खुला । उन्हें ठाकुर-माँ का माला एवं चरणामृत प्रसाद दिया गया । १२ फरवरी को श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा में उनका पार्थिव शरीर थोड़ी देर के लिए रखा गया । अपने त्रिदेवों को यही उनका, अंतिम प्रणाम था । डोरीगंज स्थित गंगा तट पर उनका अंतिम संस्कार किया गया । और श्रीरामकृष्ण - माँ सारदा की यह पगली बिटिया अपने परम पावन त्रिदेवों के दिव्य धाम की अखण्ड अन्तेवासिनी हो गयीं ।

विवेक शिखा परिवार भगवान श्री रामकृष्ण, भगवती माँ सारदा-भवानी एवं स्वामी विवेकानन्द से उन महीयसी नारी श्रीमती गंगा देवी की आत्मा की शाश्वत शान्ति की कामना और प्रर्थना करता है ।

-: सच्चा-निर्वाण :-

नंदा भगवान बुद्ध की बहन थी । जब भगवान बुद्ध कपिलवस्तु पधारे तो अन्य लोगों के साथ नंदा भी बुद्ध संघ में भिक्षुणी बनकर रहने लगी, किंतु नंदा बहुत ही रूपवती थी और बुद्ध रूप के कटु आलोचक थे । इस कारण वह भगवान बुद्ध के सामने जाने में सदा संकोच करती थी, लेकिन भगवान उसके मन की बात को जान गए । एक दिन नंदा को बुलाकर उन्होंने कहा, 'यह शरीर मांस और रक्त से लिप्त हड्डी का किला है । इसमें जरा और मृत्यु राज्य करते हैं । यह जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है । नंदा! रोग, अशुचिता, सड़न और दुर्गन्ध से युक्त इस शरीर की भावना करने से तू सौंदर्य की दासता से मुक्त होगी । अपनी प्रज्ञा को जाग्रत कर, जिससे तुझे सही मार्ग मिले । शाश्वत सत्य का विचार कर और प्रमाद छोड़कर शरीर के बाहर और भीतर देख । तेरी काया की माया दूर होगी और तू अप्रमत्त, मुक्त तथा शांत बनेगी' - यही सच्चा निर्वाण है ।

-प्रस्तुति : अरविन्द कुमार

विवेक शिखा के ग्राहकों से निवेदन

प्रिय मित्रो,

भगवान श्रीरामकृष्ण एवं श्रीमाँ सारदा के जीवन, आदर्श एवं जीवनदायी संदेशों तथा वेदान्त के उदात्त विचारों को विश्व के कोने-कोने में फैला देने की आवश्यकता का तीव्र अनुभव स्वयं विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी ने ही किया था। पत्र-पत्रिकाएँ इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए एक कारगर औजार साबित होंगी, इस तथ्य को स्वयं स्वामीजी ने गहराई से महसूस किया था। उन्होंने बार-बार अपने गुरुभाइयों एवं संन्यासी तथा गृही शिष्यों को इस महत् कार्य की ओर उत्प्रेरित भी किया था।

स्वामी ब्रह्मानन्द को न्यूयार्क से २५ सितम्बर, १८९४ को लिखे अपने पत्र में स्वामीजी ने लिखा था, "तुम लोगों को एक मासिक पत्रिका का सम्पादन करना होगा। उसमें आधी बंगला रहेगी, आधी हिन्दी।" (पत्रवाली:पृ० १७८) पत्रिका बिकने की समस्या पर ध्यान देते हुए उन्होंने आलासिंगा पेरुमल को लिखा था, इस तरह की पत्रिकाओं को हमारे शिष्यों द्वारा सहायता मिलेगी..... । भारतीय पत्रों की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिए। (पत्रा. २. भाग पृ० ४७)। पुनः पेरुमल को ही स्वामीजी ने लिखा..... "यदि हो सके तो समाचार-पत्र और मासिक पत्रिका-दोनों की निकालो। मेरे जो भाई चारों तरफ घूम फिर रहे हैं वे ग्राहक बनायेंगे-मैं भी बहुत ग्राहक बनाऊँगा।" (पत्रा. २ भा.पृ. १८५) पत्रिका के लिए स्वामीजी की भावनाओं को इन्हीं उद्गारों से समझा जा सकता है।

स्वामीजी की ऐसी ही प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर "विवेक शिखा' का प्रकाशन शुरु किया गया जो विगत उन्नीस वर्षों से निरन्तर लोकप्रिय होती हुई अनवरत रूप से चल रही है। इस बीच कागज एवं मुद्रण ही दरों में भयंकर वृद्धि होने के कारण नियमित समय पर हमें इसके प्रकाशन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इसी से इस वर्ष इसके प्रकाशन में भयंकर व्यवधान हुआ है। वस्तुतः दारिद्र्य-दोष हमारे सभी गुणों का हरण कर लेता है।

अतएव, विवेक शिखा के कृपालु ग्राहकों एवं ग्राहिकाओं से अनुरोध है कि -

- आप में से प्रत्येक ग्राहक-ग्राहिका कम-से-कम ५-५ नये ग्राहक बनाने अथवा अपने पाँच मित्रों एवं संबंधियों को उपहार के रूप में विवेक शिखा भेजने की कृपा करें तो विवेक शिखा की अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में मदद मिलेगी।
- आप विवेक शिखा के लिए विज्ञापन भी दे या दिलवा सकते हैं।
- विवेक शिखा के लिए संरक्षक योजना के तहत आर्थिक अनुदान के रूप में रुपये विवेक शिखा के नाम से मनीआर्डर या ड्राफ्ट के द्वारा भेज सकते हैं।
- हमारे पास विवेक शिखा के पुराने विशेषांक-स्वामी भूतेशानन्द स्मृति अंक (मूल्य १५/-) युवाशक्ति विशेषांक (मूल्य ५/-), रामकृष्ण संघ शताब्दी अंक (मूल्य ६/-) भी काफी बचे हैं। इन्हें खरीदें। एक साथ १० या अधिक प्रतियाँ लेने पर २० प्रतिशत तक की छूट दी जायगी।
- जनवरी से वर्ष प्रारम्भ होता है। ग्राहक वर्ष के किसी भी माह से बन सकते हैं। ग्राहकों को जनवरी से सारे अंक उपलब्ध होंगे।

निवेदक

सम्पादक, **विवेक शिखा**

रामकृष्ण निलयम् जयप्रकाश नगर,

छपरा - ८४१३०१ (बिहार)

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी. १४-८३

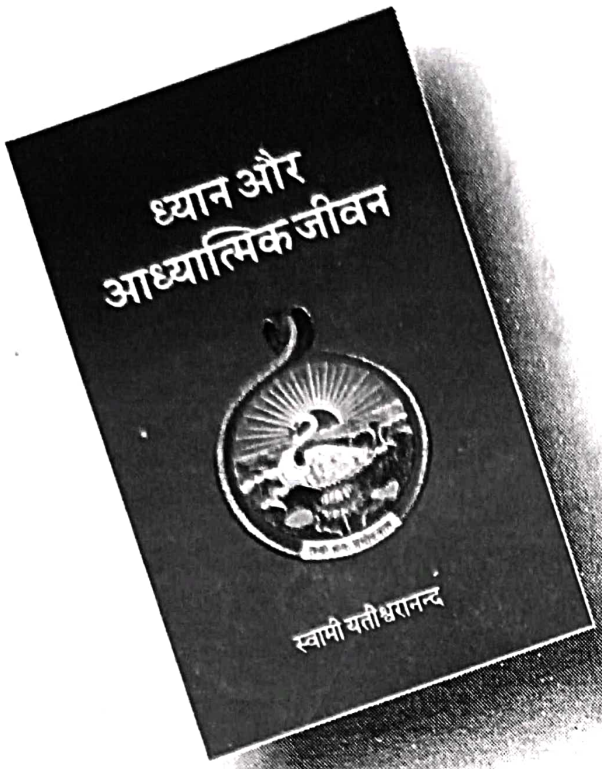

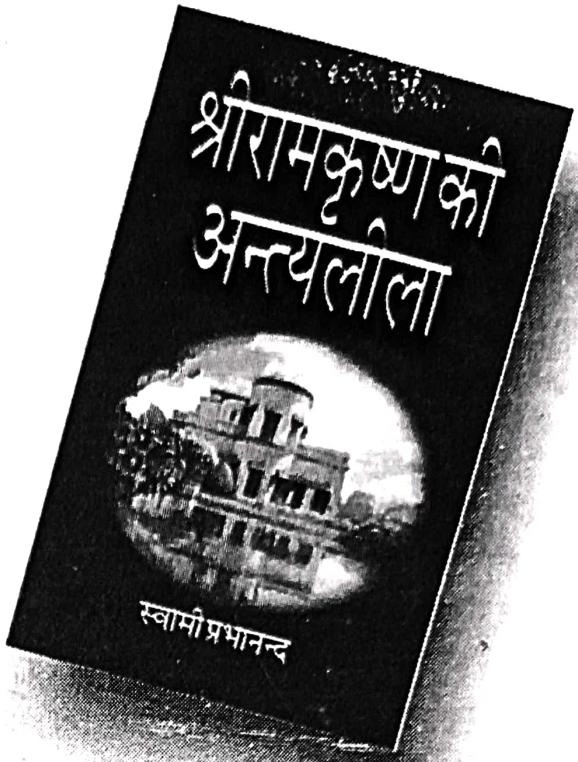

कुछ संग्राह्य पुस्तकें

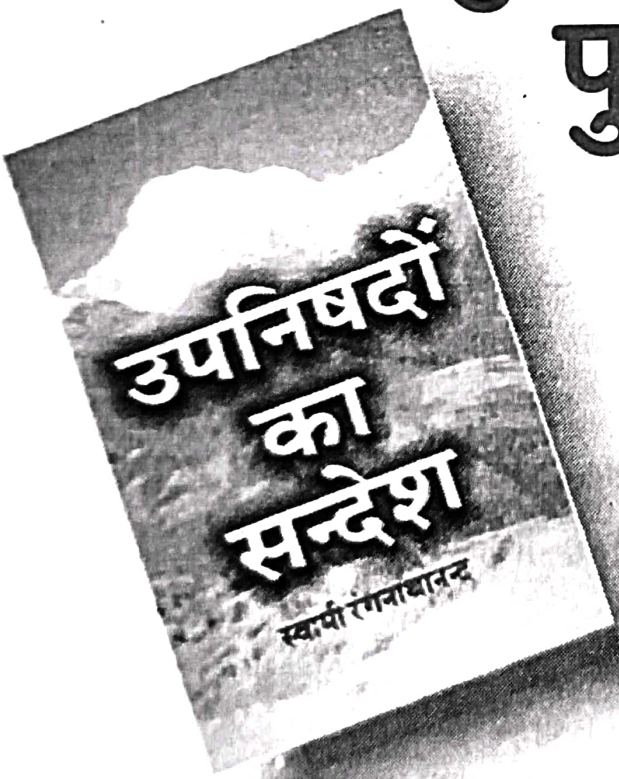

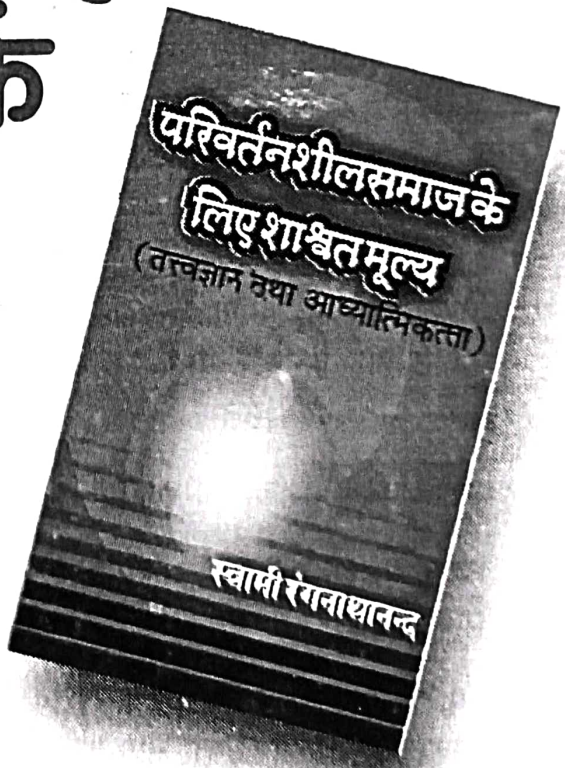

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिण्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।
सम्पादक : डॉ केदारनाथ लाभ